शनिवार,
२४ अप्रैल, १९५४

सत्यमेव जयते

संसदीय वाद विवाद

1st

लोक सभा

छठा सत्र

शासकीय वृत्तान्त

(हिन्दी संस्करण)

Preservation Unit
13.3.92
Fumigated
On [illegible]
Parliament Library

भाग २—प्रश्न और उत्तर से पृथक् कार्यवाही

विषय-सूची

अंक ४--१७ अप्रल से ४ मई, १९५४

	पृष्ठ भाग
शनिवार, १७ अप्रैल, १९५४	
सदन पटल पर रखे गये पत्र---	
तटस्थ राष्ट्र प्रत्यावर्तन आयोग, कोरिया के प्रतिवेदन और चुने हुए दस्तावेज	३४३९
अत्यावश्यक लोक महत्व के विषय पर ध्यान आकर्षित करना---	
दक्षिण पूर्व एशिया और पश्चिमी प्रशान्त महा सागर के लिये सामूहिक रक्षा की व्यवस्था	३४३९-३४४३
सदन का कार्यक्रम	३४४३-३४४५
अनुदानों की मांगें---	
मांग संख्या २६-वित्त मंत्रालय	३४४६-३४८७
मांग संख्या २७-सीमा शुल्क	३४४६-३४८७
मांग संख्या २८-संघ उत्पादन शुल्क	३४४६-३४८७
मांग संख्या २९-निगम कर तथा संपत्ति शुल्क समेत आय पर कर	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३०-अफीम	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३१-स्टाम्प्स	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३२-अभिकरण विषयों के प्रशासन तथा कोषों के प्रबन्ध के लिये अन्य सरकारों, विभागों आदि का भुगतान	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३३-लेखा-परीक्षा	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३४-मुद्रा	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३५-टकसाल	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३६-प्रादेशिक तथा राजनैतिक पेंशनें	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३७-वृद्धावकाश भत्ता तथा निवृत्ति वेतन	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३८-वित्त मंत्रालय के अधीन विविध विभाग तथा व्यय	३४४६-३४८७
मांग संख्या ३९-राज्यों को सहायक अनुदान	३४४६-३४८७
मांग संख्या ४०-संघ तथा राज्य सरकारों के बीच विविध समायोजन	३४४६-३४८७
मांग संख्या ४१-असाधारण भुगतान	३४४६-३४८७
मांग संख्या ४२-विभाजन पूर्व के भुगतान	३४४६-३४८७
मांग संख्या ११५-भारतीय सुरक्षा मुद्रणालय पर पूंजीव्यय	३४४६-३४८७

146 L S D

	पृष्ठ भाग
मांग संख्या ११६–मुद्रा पर पूंजी व्यय	३४४६–३
मांग संख्या ११७–टकसाल पर पूंजी व्यय	३४४६–३४
मांग संख्या ११८–निवृत्ति वेतनों का परिगत मूल्य	३४४६–३४८७
मांग संख्या ११९–छंटनी किये गये व्यक्तियों को भुगतान	३४४६–३४८७
मांग संख्या १२०–वित्त मंत्रालय का अन्य पूंजी व्यय	३४४६–३४८७
मांग संख्या १२१–केन्द्रीय सरकार द्वारा देय ऋण तथा अग्रिम धन	३४४६–३४८
मांग संख्या ७०–विधि मंत्रालय	३४८७–३४८
मांग संख्या ७१–चाय-व्यवस्था	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७२–प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक गवेषणा मंत्रालय	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७३–भारतीय भूपरिमाप	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७४–वानस्पतिक सर्वेक्षण	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७५–प्राणकीय परिमाप	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७६–भूतत्वीय परिमाप	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७७–खानें	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७८–वैज्ञानिक गवेषणा	३४८७–३४८८
मांग संख्या ७९–प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक गवेषणा मंत्रालय के अधीन विविध विभाग तथा व्यय	३४८७–३४८८
मांग संख्या ८०–संसद् कार्य विभाग	३४८७–३४८८
मांग संख्या १०७–संसद्	३४८७–३४८८
मांग संख्या १०८–संसद् सचिवालय के अधीन विविध व्यय	३४८७–३४८८
मांग संख्या १०९–उपराष्ट्रपति का सचिवालय	३४८७–३४८८
मांग संख्या १३१–प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक गवेषणा मंत्रालय का अन्य पूंजी व्यय	३४८७–३४८८
विनियोग (संख्या २) विधेयक—पारित	३४८८–३४८९
गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति की छठी रिपोर्ट स्वीकृत	३४८९–३४९०
केन्द्र में प्रशासन-तन्त्र तथा कार्यप्रणाली के विषय म संकल्प—असमाप्त	३४९०–३५३८

सोमवार, १९ अप्रैल, १९५४

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय की ओर ध्यान दिलाना— शकूर बस्ती आर्डिनेन्स डिपो में गड़बड़	३५३९–३५४२
सदन की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति— द्वितीय प्रतिवेदन उपस्थापित	३५४२–३५४३
वित्त विधेयक—विचार करने का प्रस्ताव—असमाप्त	३५४३–३६१६

	पृष्ठ भाग
मंगलवार, २० अप्रैल, १९५४	
सदन पटल पर रखे गये पत्र—	
विभिन्न आश्वासनों, प्रतिज्ञाओं आदि पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही संबंधी विवरण	३६१७–३६१८
संसद् सदस्यों के वेतन तथा भत्ते के भुगतान के सम्बन्ध में संयुक्त समिति—द्वितीय प्रतिवेदन का उपस्थापन	३६१७
वित्त विधेयक—असमाप्त	३६१८–३६८८
बुधवार, २१ अप्रैल, १९५४	
राज्य परिषद् से सन्देश—	
शिलांग (राइफल रेंज तथा उमलांग) छावनियां विधि आत्मसात्करण विधेयक—परिषद् द्वारा पारित रूप में सदन पटल पर रखा गया	३६८९
हिमाचल प्रदेश तथा बिलासपुर (नया राज्य) विधेयक—परिषद् द्वारा पारित रूप में सदन पटल पर रखा गया	३६८९
सदन पटल पर रखे गये पत्र—	
भारत भण्डार विभाग द्वारा अस्वीकृत टेण्डरों सम्बन्धी वक्तव्य	३६९०
"भारत में फ्रेंच बस्तियां" नामक दस्तावेज	३६९०
वित्त विधेयक—विचार प्रस्ताव—स्वीकृत	३६९०–३७६२
बृहस्पतिवार, २२ अप्रैल, १९५४	
याचिका समिति—पहली रिपोर्ट का उपस्थापन	३७६३
सदन की बैठकों से सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति की सिफारिशें	३७६३–३७६४
वित्त विधेयक—संशोधित रूप में पारित	३७६४–३८६८
शुक्रवार, २३ अप्रैल, १९५४	
सदन का कार्य	३८६९–३८७०
सरकारी विधेयकों का क्रम	३८७०–३८७२
न्यूनतम मजूरी (संशोधन) विधेयक—संशोधित रूप में पारित	३८७२–३८८४
स्वेच्छापूर्वक वेतन परित्याग (करारोपण से विमुक्ति) संशोधन विधेयक—पारित	३८८४–३९०४
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक—पुरःस्थापित	३९०४
अनैतिक पण्य तथा वेश्यागृह दमन विधेयक—वादविवाद स्थगित	३९०५–३९२०
खाद्य पदार्थ अपमिश्रण दंड विधेयक—वादविवाद स्थगित	३९२०–३९३०
महिला तथा बाल संस्था अनुज्ञापन विधेयक—विचार करने का प्रस्ताव—असमाप्त	३९३०–३९४६

शनिवार, २४ अप्रैल, १९५४

राज्य परिषद से संदेश ३९४७–३९४८, ४०४२

हिन्दचीन के विषय में वक्तव्य ३९४८–३९५६

पुस्तक प्रदान (सार्वजनिक पुस्तकालय) विधेयक—संशोधित रूप में पारित ३९५६–३९७३

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) विधेयक—संशोधित रूप में पारित ३९७३–४०३९

लुशाई पहाडी जिला (नाम परिवर्तन) विधेयक—पारित ४०४०–४०४२

विलीन क्षेत्र (विधि) विधेयक– विचार करने का प्रस्ताव—असमाप्त ४०४२–४०४४

सोमवार, २६ अप्रैल, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र— ४०४५–४०४६

परिवहन मंत्रालय अधिसूचना संख्या ९–पी० आई० (२५०) ५३, दिनांक १५–२–५४

कलकत्ता बन्दरगाह आयोग के लिये निर्वाचित आयुक्तों के स्थानों का पुर्नवितरण दिखाने वाला विवरण

परिवहन मंत्रालय अधिसूचना संख्या १३–पी० आई० (१२४) ५३, दिनांक १५–२–५४

मद्रास बन्दरगाह न्यास के लिये निर्वाचित न्यासधारियों के स्थानों का पुनर्वर्गीकरण दिखाने वाला विवरण ४०४६–४०५२

विलीन क्षेत्र (विधि) विधेयक—पारित ४०५४–४०६९

जनता के लिये तात्कालिक महत्वपूर्ण-विषय की ओर ध्यान आकर्षित करना —

माओ-माओ आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों के सन्देह में सामूहिक रूप से नैरोबी स्थित भारतीय आयुक्त के कार्यालय की तलाशी ४०५२–४०५४

औषधि तथा जादुई चिकित्सा (आपत्तिजनक विज्ञापन) विधेयक– पारित ४०६९–४१०५

संघीय प्रयोजनों के लिये भूमि का राज्य द्वारा अर्जन (मान्यीकरण) विधेयक—पारित ४१०५–४१०८

भारतीय रेलवे (द्वितीय संशोधन) विधेयक—पारित ४१०९–४११८

मंगलवार, २७ अप्रैल, १९५४

राज्य परिषद् से सन्देश ४११९

याचिका-समिति—द्वितीय प्रतिवेदन का उपस्थापन ४११९

खाद्य स्थिति-याचिका प्राप्त ४११९

अविलम्बनीय लोक-महत्व के विषय की ओर ध्यान दिलाना—

उत्तर बिहार को कोयला तथा सीमेंट ले जाने के लिये अपर्याप्त परिवहन सुविधायें ४१२०–४१२२

दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक–पुरःस्थापित ४१२२

कारखाना (संशोधन) विधेयक—पारित करने के लिये प्रस्ताव—असमाप्त ४१२२–४१८२

अनर्हता निवारण (संसद् तथा भाग ग राज्य विधान मंडल) संशोधन विधेयक—परिषद् द्वारा पारित रूप में पटल पर रखा गया ४१८२

बुधवार, २८ अप्रैल, १९५४

अविलम्बनीय लोक-महत्व के विषय की ओर ध्यान दिलाना—

माही के निकट फ्रांसीसी भारतीय पुलिस द्वारा भारतीय संघ के नागरिकों पर गोली वर्षा ४१८३–४१८४

स्थगन प्रस्ताव—

माही के निकट फ्रांसीसी भारतीय पुलिस द्वारा भारतीय संघ के नागरिकों पर गोली-वर्षा ४१८४–४१८९

कारखाना (संशोधन) विधेयक—पारित ४१८६–४१८९

अनर्हता निवारण (संसद् तथा भाग ग राज्य विधान मंडल) संशोधन विधेयक—पारित ४१८९–४२१४

समवाय विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने तथा परिचालित करने का प्रस्ताव—असमाप्त ४२१४–४२६०

बृहस्पतिवार, २९ अप्रैल, १९५४

गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों सम्बन्धी समिति—

सातवें प्रतिवेदन का उपस्थापन ४२६१

समवाय विधेयक—

संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव—असमाप्त ४२६१–४३३६

शुक्रवार, ३० अप्रैल, १९५४

राज्य परिषद् से सन्देश ४३३७

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

भारत सरकार तथा नेपाल सरकार के बीच कोसी परियोजना के सम्बन्ध में हुआ समझौता ४३३७

भारत के औद्योगिक वित्त निगम के सामान्य विनियमों में संशोधन ४३३८

भारतीय कृषि गवेषणा परिषद् का १९५१–५२ वर्ष के लिये प्रतिवेदन ४३३९

तारांकित प्रश्न संख्या १२० के उत्तर में शुद्धि ४३३८

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यान आकर्षित करना—

माही में फ्रांसीसी भारतीय पुलिस द्वारा गोली वर्षा ४३३९–४३४१

स्थगन प्रस्ताव—

फ्रांसीसी भारतीय पुलिस द्वारा माही के निकट गोली वर्षा ४३४१

समवाय विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव—असमाप्त ४३४१–४३६०

गैर सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति का सातवां प्रतिवेदन—स्वीकृत ४३६०–४३६५

केन्द्र में प्रशासन तंत्र तथा कार्य प्रणाली सम्बन्धी संकल्प--असवीकृत ४३६६–४३६१

हाथ करघा उद्योग के लिये साड़ियों तथा धोतियों के उत्पादन के संरक्षण संबंधी संकल्प--असमाप्त ४३६१–४४०२

शनिवार, १ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

केन्द्रीय रेशम बोर्ड का बुलेटिन संख्या १६ ४४०३

भारतीय ढोर परिरक्षण विधेयक सम्बन्धी वक्तव्य ४४०३–४४०६

समवाय विधेयक--संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव--असमाप्त ४४१०–४४६६

सोमवार, ३ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

विनियोग लेखे (डाक तथा तार), १६५१–५२ तथा लेखा परीक्षा प्रतिवेदन, १६५३ ४४६७

समवाय विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव--स्वीकृत ४४६७–४५५१

दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक--संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव--असमाप्त ४५५१–४५७६

मंगलवार, ४ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

परिसीमन आयोग अन्तिम आदेश संख्या १० ४५७७

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव--असमाप्त ४५७७–४६४८

GIPD—HS—477 L. S.—3-1-55—285

संसदीय वाद विवाद

(भाग २—प्रश्नोत्तर के अतिरिक्त कार्यवाही)

शासकीय वृत्तान्त

लोक सभा

शनिवार, २४ अप्रैल, १९५४

सभा सवा आठ बजे समवेत हुई

[**अध्यक्ष महोदय** पीठासीन हुए]

(प्रश्न नहीं पूछे गये : भाग १ प्रकाशित नहीं हुआ)

राज्य परिषद् से संदेश

सचिव : मुझे सदन को यह सूचना देनी है कि राज्य परिषद् ने लोक सभा द्वारा १२ मार्च १९५४ को पारित मुस्लिम वक्फ विधेयक बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लिया है ।

श्री एच० एन० मुकर्जी : प्रधान मंत्री के वक्तव्य से पहले, मैं एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव की ओर आप का ध्यान आकर्षित करूंगा, जिस की सूचना मैं पहले ही दे चुका हूं, और चूंकि चुनाव कल होने जा रहे हैं, मैं संकेत .....

अध्यक्ष महोदय : ध्यान आकर्षित करना आवश्यक नहीं । सूचना मिलते ही मैं उस की ग्राह्यता आदि की जांच के लिये भेज देता हूं । माननीय सदस्य द्वारा उठाई गई बात विधि और व्यवस्था की है जो राज्य का विषय है । माननीय मंत्री जांच कर के उपलब्ध सूचना यथाशीघ्र मुझे दे देंगे । सदन में उस पर चर्चा

नहीं हो सकती । वह प्रेस वक्तव्य जिस पर माननीय सदस्य विश्वास कर के चल रहे हैं एक पक्षीय विवरण मात्र हैं ।

हिन्दचीन के विषय में वक्तव्य

प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य एवं रक्षा मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : सदन को विदित है कि विगत फरवरी में फ्रांस, सं० रा० अमरीका, रूस और ब्रिटेन ने आपस में सहमत हो कर गणराज्य चीन के साथ एक ऐसे सम्मेलन के बुलाने का निश्चय किया था, जिस में सम्बन्धित अन्य राज्य भी बुलाये जायें और जो कोरिया और हिन्दचीन की समस्या पर विचार करें । इस सम्मेलन की बैठक अगले सप्ताह जैनेवा में शुरू हो रही है ।

हम न तो इस सम्मेलन में भाग ले रहे हैं और न हमने हिंदचीन में चलने वाले युद्ध में ही भाग लिया है । फिर भी हमें हिन्दचीन की समस्या में रुचि है और उस के विषय में हमें भारी चिन्ता है विशेषतः अभी हाल में इस के बारे में हुई बातों के सम्बन्ध में । हम यह भी चाहते हैं कि जैनेवा सम्मेलन बात चीत द्वारा इस प्रश्न को सुलझाये और उस में सफल हो, जिस से युद्ध की वह छाया नष्ट हो सके, जिस ने बहुत समय से हमारे पड़ौसी प्रदेशों को आच्छन्न कर रखा है और जो गहनतर और विस्तृततर होने का संकेत दे रही है ।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

इस समस्या की बुनियादी वास्तविकताओं का, अंतर्ग्रस्त राष्ट्रीय भावनाओं का और वहां की वर्तमान राजनीतिक तथा सैनिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि का ज्ञान रचनात्मक और सफल सिद्ध हो सकने वाले समाधान के लिये आवश्यक है ।

हिंदचीन के इस संघर्ष की जड़ में सारतः उपनिवेशवाद से मोर्चा लेन वाला आन्दोलन और दमन कर के और फूट डाल कर दबाने वाले परंपरागत तरीकों से उस का निपटाया जाना है ।

विदेशी हस्तक्षेपों से मामला और भी उलझ गया है । फिर भी यह मूल रूप में उपनिवेश-विरोधी तथा राष्ट्रीय संघर्ष है । इस की मान्यता तथा स्वतन्त्रता व स्वाधीनता के राष्ट्रीय भावों का समाधान और विदेशी दबाव से उन की रक्षा ही निबटारे व शान्ति का आधार बन सकते हैं । बड़े बड़े अस्त्रों का प्रयोग करने तथा बड़ी बड़ी व्यूह रचना करने पर भी झगड़ा आज भी गुरीला युद्ध है । और कोई भी निश्चित या स्थाई मोर्चा नहीं है । देश प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों में विभक्त हो गया है। परन्तु उन के अपने अपने क्षेत्रों की सीमायें निश्चित नहीं हैं । बड़ी बड़ी बस्तियां तथा सीमावर्ती क्षेत्र खण्ड व जन संख्या दिन प्रति दिन अपनी राजनिष्ठा इधर से उधर बदलती हैं । युद्ध में विजय तथा पराजय होती है । स्थान लिये जाते हैं तथा पुनः लिये जाते हैं । परन्तु युद्ध वर्षोत्तर वर्ष में बढ़ती भयानकता से होता है । लाखों हिंद-चीनी, सैनिक तथा अन्य व्यक्ति, इस के बावजूद कि वे किस ओर के हैं, मरते हैं तथा ज़ख्मी होते हैं अथवा अन्यथा दुख उठाते हैं और उन का देश बर्बाद होता है ।

हिन्द चीन में साम्राज्यवाद को चुनौती का आन्दोलन १९४० में जापानियों के विरुद्ध आरम्भ हुआ था । जापान से युद्ध के बीच वियत मिन्ह ने, जो १९५१ में स्थापित हुआ, अमरीकी तथा मित्र राष्ट्रों की सेना की सहायता की थी । अन्य राष्ट्र वादियों तथा अन्य दलों ने भी सहायता की थी । होचि मिन्ह इन सब के नेता थे । उस समय की वियट मिन्ह उद्घोषणा में 'अमरीका, रूस, ब्रिटेन, तथा चीन द्वारा जनतन्त्रीय सिद्धान्तों की रक्षा' का वर्णन किया गया था । उस में इन महान शक्तियों से यह उद्घोषणा करने को कहा गया था कि जापानी सेनाओं को देश से निकालने के पश्चात् हिन्द चीनियों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जायेगी ।

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त, एक अस्थायी सरकार जिस में पन्द्रह सदस्यों में से पांच साम्यवादी थे स्थापित की गई थी । साधारण राष्ट्रवादियों ने कैथोलिकों तथा अन्य व्यक्तियों ने इस का समर्थन किया था । होचि मिन्ह "वियटनाम के जनतन्त्रीय गणतन्त्र" के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे जिस की उद्घोषणा सितम्बर १९४५ में भी की गई थी तथा उसे उस समय की चीन सरकार ने मान्यता दी थी । ६ मार्च १९४६ को फ्रांस ने, जिस ने अब युद्ध पश्चात् हिन्द चीन पर अधिकार कर लिया है, होचि मिन्ह से एक समझौता किया । उस में फ्रांस ने वियट नाम के जनतन्त्रीय गणतन्त्र को "स्वतन्त्र राज्य के रूप में जिस की अपनी सरकार, संसद्, सेना तथा वित्त हो और जो हिन्द चीन राज्य-संघ तथा फ्रांसीसी संघ का भाग हो," मान्यता दी थी । यह प्रबन्ध अधिक समय तक नहीं चला । १९४४ में होचि मिन्ह के गणतन्त्र तथा फ्रांसीसी साम्राज्य में झगड़ा आरम्भ हुआ जो अभी तक चल रहा है । जून १९४८ में फ्रांस ने अनाम के भूतपूर्व महाराज, बाओ दाई के साथ एक समझौता किया तथा उसे वियट नाम का अध्यक्ष बना दिया । उसे उन्हों ने

फ्रांस संघ में सम्मिलित एक राज्य माना इसी प्रकार के समझौते हिन्द चीन के दो अन्य राज्यों, लाओस तथा कम्बोडिया राज्यों के साथ फ्रांस ने किये ।

इस स्थिति में, हिन्द चीन का झगड़ा अपना वर्तमान तथा अति अधिक अशुभ रूप धारण करने लगा अर्थात् वह दो शक्ति गुटों बीच के झगड़े का प्रतिबिंब बना । फ्रांसीसियों को वह सहायता तथा सामग्री हिन्द चीन में युद्ध करने के लिये प्राप्त हो गई जो संयुक्त राज्य अमरीका ने फ्रांस को दी थी । यह प्रकाशित हुआ है कि दूसरी ओर वियट मिन्ह को, यद्यपि अभी तक वह यही कहता है कि युद्ध फ्रांसीसी उपनिवेशवाद के विरुद्ध है चीन के लोकतन्त्रीय संघ से सहायता प्राप्त हुई जिस की सरकार उस मान्यता को जारी रखती है जो उस के पूर्वगामी ने वियट नाम (वियट मिन्ह) के जनतन्त्रीय संघ को दी थी ।

एक हस्तक्षेप के पश्चात् दूसरा हस्तक्षेप होता रहा तथा युद्ध की भयंकरता बढ़ गई । वार्तालाप अधिक से अधिक कठिन तथा निष्फल हो गया । इस पृष्ठभूमि पर ही पिछले मासों की घटनायें हुई हैं ।

इन में से पहिली घटना बर्लिन शक्तियों का यह निश्चय है कि जेनेवा सम्मेलन में इस समस्या पर विचार किया जाये । हम ने इस सम्मेलन का स्वागत किया तथा आशा प्रकट की कि इस के फलस्वरूप हिन्द-चीन में शान्ति स्थापित होगी । इस में हमने निबटारे के लिये वार्तालाप को जारी रखने का निश्चय देखा । उस समय में ने इस सदन में दिये वक्तव्य में यह प्रार्थना करने का साहस किया था कि हिन्द चीन में एक युद्ध विराम रेखा बनाई जाये । सदन ने उस का एक मत हो कर स्वागत किया था ।

जब कि जेनेवा सम्मेलन सम्बन्धी निश्चय एक स्वागतार्थ घटना थी, किन्तु शीघ्र ही दूसरी घटनायें हुईं जिन से हमें कुछ चिन्ता तथा आशंका हुई । इन में हैं :

(१) तुरन्त तथा ठोस बदले का तथा चीनी मुख्य भूमि पर आक्रमणों की सम्भावना का वारंवार निर्देश तथा हिन्द चीन में युद्ध के क्षेत्र तथा गति को बढ़ाने सम्बन्धी वक्तव्य ।

(२) दक्षिण पूर्वी एशिया में संयुक्त तथा सामूहिक कार्यवाही में भाग लेने के लिये पश्चिमी देशों, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमरीका तथा कुछ एशियाई राज्यों को अमन्त्रण । इस के पूर्व वक्तव्य दिये गये थे जिन में दक्षिण-पूर्वी ऐशिया के देशों के लिये एक प्रकार के एकतरफा 'मनरो सिद्धान्त' की बात कही गई थी ।

इस प्रकार हिन्द चीन में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने तथा युद्ध का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने और उसे बढ़ाने व गम्भीर बनाने के चिह्न थे ।

भारत सरकार को बड़ा खेद तथा चिन्ता है कि ऐसे महत्वपूर्ण सम्मेलन के पूर्व, जो प्रत्यक्ष रूप से यह विचार कर के बुलाया गया था कि वार्तालाप होना सम्भव तथा आवश्यक है, एक उद्घोषणा की जाये जिस में विश्वास का अभाव हो, और समझौता न होने पर दंडयोजना की धमकियां हों । वार्तालाप के पहले से ही धमकियां, तिरस्कार तथा विश्वास के अभाव की उद्घोषणायें होने से वार्तालाप में बाधा पड़ती है । वे बुरे वातावरण में आरम्भ होते हैं तथा उन में यदि कोई प्रगति होती है तो शृंखलित प्रगति होती है ।

एक और बात जिस से हमारी आशंका अवश्य बढ़ेगी, यह है कि हिन्द चीन में युद्ध की गति बढ़ रही है तथा युद्ध सामग्री का सम्भरण भी बढ़ रहा है । बढ़े हुए सम्भरण प्रत्यक्षतः वियट मिन्ह की सहायता के लिये

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

आये हैं। यह आरोप लगाया जाता है कि इस से उन्हें सैनिक विजय प्राप्त करने के लिये, जिसके परिणामस्वरूप आगामी सम्मेलन उन के लिये लाभप्रद सिद्ध हो, अधिक आक्रमण करने के योग्य बनाया जाता है। फ्रांसीसी वियट नाम की ओर, संयुक्त राज्य अमरीका की सहायता बढ़ा दी गई है तथा और अधिक सहायता के आश्वासन दिये गये हैं।

भारत में हमारे लिये ये घटनायें अति चिंताजनक हैं तथा शोचनीय महत्व की हैं। उन के संभाव्य परिणाम एशियाई देशों की हाल में प्राप्त की गई तथा प्रिय स्वतन्त्रता से टकराते हैं।

एशियाई देशों की स्वतन्त्रता तथा प्रभुत्व संपन्नता को बनाये रखना और औपनिवेशिक तथा विदेशी राज्य को समाप्त करना एशिया के लोगों की समृद्धि तथा विश्व शान्ति के लिये आवश्यक है।

हम एशिया में कोई विशेष स्थिति नहीं चाहते हैं और न ही हम संकुचित तथा क्षेत्रीय एशियाई प्रादेशिकता के समर्थक हैं। हम केवल यह चाहते हैं कि हमारा तथा अन्य लोगों का, विशेषकर हमारे पड़ौसियों का, एक शान्ति क्षेत्र हो, और हम विश्व-खिंचाव व युद्धों में न तो भाग लें और न ही उन से सम्बद्ध हों। हमारा विश्वास है कि यह हमारे लिये आवश्यक है। इस से ही हम विश्व खिंचाव को कम करने, निःशस्त्रीकरण व विश्व शान्ति को बढ़ाने में अपना सहयोग दे सकते हैं।

वर्तमान घटनाओं ने हमारी आशाओं को अंधकारमय बना दिया है। वे हमारी मूल नीतियों से टकराती हैं तथा चाहती हैं कि हम किसी गुट में शामिल हो जायें।

शान्ति हमारे लिये केवल बलवती इच्छा ही नहीं है अपितु तत्कालीन आवश्यकता है।

हिन्द चीन एक एशियाई देश है तथा निकटवर्ती क्षत्र है। उस के बड़े बड़े त्यागों के बावजूद भी, वह विदेशी हस्तक्षेप में फंस गया है तथा उस की स्वतन्त्रता की आशा अंधकारमय हो गई है। अतः हिन्द चीन की आपत्ति हम पर गहरा प्रभाव डालती है तथा हम से चाहती है कि हम इस झगड़े के झुकाव को इस के विस्तार तथा वृद्धि की ओर से हटाने तथा वह झुकाव उत्पन्न करने के लिये ठंडे हृदय से विचार करें तथा भरसक प्रयत्न करें जिस के परिणामस्वरूप झगड़े का निपटारा हो जाये :

भारत सरकार को विश्वास है कि उन के दृष्टिकोण के समस्त मतभेदों, उनके हृदय में बैठे हुए भ्रमों तथा उन के विरोधी दावों, के बावजूद भी जनेवा में एकत्रित होने वाले महान राजनीतिज्ञों तथा उन के देशवासियों का एक ही उद्देश्य है, कि युद्ध के उमड़ते तूफान को रोक दिया जाये। कुछ कठिनाइयों तथा गतिरोधों को सुलझाने में सहायता करने तथा शान्तिपूर्ण निबटारा करने में सहायता करने की अपनी हार्दिक इच्छा के कारण भारत सरकार निम्न सुझाव प्रस्तुत करने का साहस करती है :

(१) शान्ति तथा वार्तालाप का वातावरण उत्पन्न करना है। धमकियों का वातावरण जो कि विद्यमान है, हटाना है : इस दृष्टि से भारत सरकार संबंधित देशों से प्रार्थना करती है कि वे धमकियां न द। तथा युद्ध करने वाले युद्ध की गति को न बढ़ायें।

(२) युद्धविराम : इस की प्राप्ति की दृष्टि से भारत सरकार प्रस्ताव करती है :

(क) हिन्द-चीन सम्मेलन की विषय सूची में "युद्धविराम" को प्राथमिकता दी जाये;

(ख) एक युद्धविराम गुट्ट जिस में वास्तव में लड़ने वाले हों, अर्थात् फ्रांस तथा उस से सम्बद्ध तीन राज्य तथा वियट मिन्ह

(३) स्वतन्त्रता : सम्मेलन को यह निश्चय तथा उद्घोषित करना चाहिये कि झगड़े को सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि हिन्द-चीन की पूर्ण स्वतन्त्रता, अर्थात् फ्रांसीसी प्रभुत्वता की समाप्ति, को फ्रांसीसी सरकार असन्दिग्ध वचन द्वारा निस्संदेह बनाये ।

(४) सम्मेलन द्वारा तत्कालीन तथा मुख्यतः सम्बद्ध दलों के बीच प्रत्यक्ष वार्तालाप आरम्भ किया जाना चाहिये । स्वयं ही निबटारा करने की कोशिश न कर के सम्मेलन को मुख्यतः संबंधित दलों से प्रत्यक्ष वार्तालाप करने की प्रार्थना करनी चाहिये तथा इस उद्देश्य के लिये पूर्ण सहायता देनी चाहिये । ऐसे प्रत्यक्ष वार्तालाप से हिन्द-चीन के प्रश्न को उन विषयों तक सीमित रखने में सहायता प्राप्त होगी जिन का हिन्द-चीन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है । ये दल वही होंगे जो युद्ध विराम गुट के सदस्य होंगे ।

(५) तटस्थता : तटस्थता पर एक पवित्र समझौता होना चाहिये जिस में लड़ने वालों को या युद्ध के लिये सेना या युद्ध सामग्री के रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता देनी की मनाही की जाये । यह समझौता सम्मेलन द्वारा कराया जाना चाहिये, जिस के संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, इंगलिस्तान तथा चीन मुख्य हस्ताक्षर कर्ता होंगे । संयुक्त राष्ट्र से जिसे सम्मेलन के निश्चय की सूचना दी जायेगी, हिन्द चीन में तटस्थता पर एक अभिसमय बनाने के लिये प्रार्थना की जायेगी । इस अभिरकरण में उपरोक्त समझौता तथा संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में इसे कार्यान्वित करना सम्मिलित होगा । संयुक्त राष्ट्र को अन्य देशों से इस तटस्थता सम्बन्धी अभिसमय का पालन करने की प्रार्थना करनी चाहिये ।

(६) संयुक्त राष्ट्र को सम्मेलन की प्रगति की सूचना मिलनी चाहिये । चार्टर (अधिकार-पत्र) के यथोचित अनुच्छेदों के अनुकूल पारस्परिक समझौते के लिये दंडयोजना के लिये नहीं इस की प्रतिष्ठा से लाभ उठाया जाना चाहिये ।

भारत सरकार नम्रतापूर्ण तथा इस हार्दिक इच्छा तथा आशा से ये प्रस्ताव प्रस्तुत करती है कि सारा सम्मेलन, तथा प्रत्येक सम्बद्ध दल इन पर विचार करेगा । उन का विचार है कि जिन उपायों के उन्हों ने प्रस्ताव प्रस्तुत किये हैं वे व्यवहार्य हैं तथा तुरन्त ही कार्यान्वित किये जा सकते हैं ।

दूसरा विकल्प भयानक है क्या हम सब के लिये, मुख्यतः उनके लिये जो आज इस ओर या उस ओर विश्व नीति के पतवार हैं, यह सयम नहीं है जब 'हिज होलीनेस दी पोप' के मतानुसार हमें "यह जानना चाहिये कि शान्ति पारस्परिक भय के उत्तेजक तथा महंगे सम्बन्धों पर आधारित नहीं हो सकती ।" मैं महसूस करता हूं कि इन शब्दों में मैं कोई सुधार नहीं कर सकता हूं ।

पुस्तक-प्रदान (सार्वजनिक पुस्तकालय) विधेयक

शिक्षा मंत्री के सभासचिव (डा० एम० एम० दास) : अध्यक्ष महोदय, आप की अनु-

[डा० एम० एम० दास]

मति से मैं माननीय शिक्षा मंत्री की ओर से प्रस्ताव करता हूं :

"राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों को पुस्तकें प्रदान करने का उपबन्ध करने वाले विधेयक पर विचार किया जाय ।'

यह एक सीधा किन्तु प्रशंसापात्र उपाय है जिसे सारी सभा का समर्थन प्राप्त होना चाहिये । कलकत्ते के राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा बाद में घोषित किये जाने वाले तीन अन्य पुस्तकालयों को भारत में प्रकाशित होने वाली सभी पुस्तकों की एक एक प्रति बिना मूल्य दिलाने के लिये यह विधेयक लाया गया है । देश में सुविकसित पुस्तकालयों की स्थापना के महत्व तथा आवश्यकता पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता । केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय की पंचवर्षीय योजना में इस काम को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । संविधान के अनुसार, पुस्तकालयों की स्थापना तथा संधारण का काम राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में आता है । केन्द्रीय सरकार ने इस विषय में कुछ योजनायें बनाई हैं, राज्य सरकारों का ध्यान उन की ओर आकर्षित किया है और उनकी कार्यान्विति के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता देने का आश्वासन भी दिया है । केवल इतना ही नहीं अपितु केन्द्रीय सरकार यह भी देखना चाहती है कि देश के चार विभिन्न क्षेत्रों में चार सुव्यवस्थित सार्वजनिक पुस्तकालयों का विकास हो । इन में से एक राष्ट्रीय पुस्तकालय तो कलकत्ते में पहले ही से है । दूसरा जल्दी ही दिल्ली में बन रहा है । अन्य दो भी निकट भविष्य में स्थापित किये जायेंगे ।

इस विधेयक द्वारा देश के सारे प्रकाशनों पर यह संविहित बंधन डाला जा रहा है कि वे इन चारों पुस्तकालयों को अपने प्रत्येक प्रकाशन की एक एक प्रति अपने खर्चे से बिना मूल्य भेजें ।

'मुद्रणालय तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम, १८६७,' नामक एक विधान पहले ही से जारी है जिस के अनुसार केन्द्रीय सरकार के उपयोग के लिये प्रत्येक प्रकाशन की दो प्रतियां भेजनी पड़ती हैं । किन्तु इन दो प्रतियों की प्राप्ति के लिये केन्द्रीय सरकार को कार्यपालन निदेश निकालने पड़ते हैं । विद्यमान विधान में संशोधन लाने से राज्य सरकारों के साथ केन्द्रीय सरकार को बहुत जटिल संबंध रखने होंगे । इसे टालने के लिये यह स्वतन्त्र विधेयक लाया गया है ।

गत दिसम्बर में जिस रूप में इसे पुरः स्थापित किया गया था उस के अनुसार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के प्रकाशनों पर चार प्रतियां भेजने का बंधन नहीं पड़ता था । इस त्रुटि को दूर करने के लिये खंडशः चर्चा के समय मैं एक संशोधन प्रस्तुत करूंगा ।

अध्यक्ष महोदय : प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ :

"राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों को पुस्तकें प्रदान करने का उपबन्ध करने वाले विधेयक पर विचार किया जाये ।"

श्री एस० एस० मोरे (शोलापुर) : संविधान की सप्तम अनुसूची की द्वितीय सूची में अर्थात् राज्य सूची में पुस्तकालयों आदि का उल्लेख है । मेरी राय में यह विषय तो पूर्णतः राज्यों के अधीन है । संघ सूची में कोई तटस्थानी उल्लेख नही है । तो क्या हम इस प्रश्न को उठा सकते हैं ?

अध्यक्ष महोदय : मेरी राय में इस विधेयक द्वारा राज्यों के पुस्तकालयों की व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा रहा

है। फिर भी, विधि मंत्री इस प्रश्न पर अधिक प्रकाश डाल सकेंगे ।

विधि तथा अल्पसंख्यक-कार्य मंत्री (श्री बिस्वास) : मेरे माननीय मित्र श्री मोरे द्वारा उठाई गई आपत्ति में विशेष बल नहीं है। इस विधेयक द्वारा प्रकाशकों पर बंधन डाला जा रहा है, पुस्तकालयों के प्रबंधों में हस्तक्षेप नहीं किया जा रहा है ।

इस के अलावा संघ सूची की ६२वीं मद में राष्ट्रीय पुस्तकालयों का उल्लेख है। कलकत्ते के पुस्तकालय का नाम तो इस विधेयक में है ही और अन्य तीन पुस्तकालयों को राष्ट्रीय महत्व के घोषित करने वाला विधान पारित करने से माननीय मित्र द्वारा उठाई गई आपत्ति लागू नहीं होगी ।

अध्यक्ष महोदय : मैं समझता हूं कि यह नियमोचित है । अब मैं समय मर्यादा निश्चित करना चाहता हूं । क्या यह ठीक होगा कि ६ बजे विचार प्रस्ताव मतदान के लिये रखा जाये और बाकी आधे घंटे में हम संशोधनों पर विचार करें ।

श्री एस० एस० मोरे : महत्वपूर्ण बात दो सिद्धान्त की है और जिस सिद्धान्त पर आप ने इस विधेयक को बनाया है और सदन के समक्ष रखा है मैं उस का कड़ा विरोध करता हूं । इस देश में प्रकाशकों की तो पहले ही हालत अच्छी नहीं है। मैं समझता हूं कि हमारे पुस्तकालयों में सारी उपलब्ध पुस्तकें होनी चाहियें परन्तु उस का यह तो अभिप्राय नहीं कि पुस्तकालयों में सारी पुस्तकें रखने के लिये हम बेचारे प्रकाशकों को हानि पहुंचायें, इस से देश को तो लाभ होगा परन्तु प्रकाशकों को हानि होगी । मैं समय की कमी को देखते हुए कुछ ज्यादा कहे बिना इस विधेयक का कड़ा विरोध करता हूं क्यों कि इस से प्रकाशन उद्योग को धक्का पहुंचेगा जो कि अभी सुस्थिर नहीं है ।

प्रधान मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : दूसरी ओर बैठे माननीय सदस्य द्वारा दिया गया तर्क सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ है : स्पष्ट ही है कि वह इस मामले में अन्तर्राष्ट्रीय रीति से परिचित नहीं हैं और उन्हों ने यह नहीं सोचा है कि पुस्तक विक्रेताओं तथा प्रकाशकों को प्रोत्साहन देने का एक ही तरीका है और वह है पुस्तकों का प्रचार करना । हमें राष्ट्रीय पुस्तकालय बनाने हैं और ऐसा करने का केवल यही तरीका है कि प्रकाशकों के साथ कोई ऐसा प्रबन्ध किया जाये । सामान्यतः एक मुख्य पुस्तकालय में जैसे लन्दन में संग्राहलय है, प्रत्येक छपा हुआ लेखा रखा जाता है। हो सकता है कि इन छपी हुई चीज़ों में से ५० प्रतिशत किसी काम के न हों परन्तु उन्हें ऐतिहासिक अभिलेख के रूप में रखा जाता है। इंगलिस्तान में अन्य पुस्तकालय भी हैं—जैसे आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज तथा एडिन्ब्रा । उन को भी सारी छपी हुई चीज़ें रखने का अधिकार तो है, परन्तु वे वही चीज़ें, वही पुस्तकें रखते हैं जिन को वे उचित तथा लाभदायक समझें । वे प्रत्येक पत्रिका नहीं रखते । इस प्रकार उन्हों ने बोडलेइन पुस्तकालय, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का पुस्तकालय आदि स्थापित किये हैं, और इन का बहुत राष्ट्रीय महत्व है। जब तक कोई विधि न हो इस प्रकार के पुस्तकालयों का निर्माण हो ही नहीं सकता। और जहां तक प्रकाशनों का सम्बन्ध है, अन्तिम रूप में उन्हें भी इस प्रकार के प्रचार से लाभ होता है। हम सारे भारत में पुस्तकालय स्थापित करना चाहते हैं, केवल राष्ट्रीय पुस्तकालय ही नहीं । राष्ट्रीय पुस्तकालय अन्य पुस्तकालयों का एक केन्द्र सा बन जाते हैं । यूरोप के देशों में कोई भी अच्छी अथवा कुछ कुछ लोकप्रिय पुस्तक जो होती है उस की पुस्तकालयों के लिये ही सहस्रों की संख्या में मांग होती है, क्योंकि लोगों के अलावा सहस्रों पुस्तकालय पुस्तकों का क्रय करते हैं ।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

इसलिये, मेरा निवेदन है कि यह जो विधेयक सदन के समक्ष रखा गया है, वह बहुत आवश्यक है और नही केवल राष्ट्र के हित में है अपितु प्रकाशनों तथा लेखकों के हित में भी है।

श्री रामचन्द्र रेड्डी (नल्लोर) : मुझे कुछ एक शब्द कहने हैं। परिभाषा के खंड में कहा गया है कि इन चार पुस्तकालयों को किसी भी भाषा में प्रकाशित की गई प्रत्येक पुस्तक आदि की एक एक प्रति भेजी जानी चाहिये। मेरे विचार में काफी प्रकाशन ऐसे हैं जो राष्ट्रीय पुस्तकालय में रखने योग्य नहीं। उदाहरण के लिये बच्चों के लिये जो पुस्तकें लिखी जाती हैं वे राष्ट्रीय पुस्तकालय में रखने की चीज नहीं हैं। सरकार को चाहिये कि इस विधेयक का संशोधन कर के अथवा अन्यथा ऐसा नियम बनाये कि प्रत्येक प्रकाशक द्वारा प्रकाशित विषयों की सूची पुस्तकालयों को भेजी जाये और वे उन में से चुन कर जो पुस्तकें उचित समझें उन को मंगवायें। अन्यथा पुस्तकालयों में इतनी पुस्तकें बढ़ जायेंगी कि उन को रखना भी सम्भव नहीं होगा।

दूसरी बात यह है कि पुस्तकालयों को पुस्तकें भेजने पर प्रकाशकों का पार्सल आदि भेजने पर खर्च होता है। यदि उन्हें डाक की रियायत दी जाये तो उन्हें काफी सुविधा होगी।

मेरा सुझाव है कि विधेयक का या तो संशोधन किया जाये या खंड ७ के अन्तर्गत नियम बनाये जायें जिन में ऐसी शर्तें रखी जायें कि सारी उपयुक्त पुस्तकें पुस्तकालयों को मिलें और अनुपयुक्त पुस्तकें वहां न रखी जायें।

श्री राधेलाल व्यास (उज्जैन) : अध्यक्ष महोदय, मैं इस बिल का स्वागत करता हूं। हमारे इस बहुत बड़े देश में यह जरूर है जो एक लाइब्रेरी से काम नहीं चल सकता है : अगर एक ही लाइब्रेरी हो तो दूर दूर के लोगों को एक बहुत दूरी के स्थान पर आना पड़ेगा। इसलिये गवर्नमेंट का यह प्रस्ताव कि तीन और भी लाइब्रेरी कायम होंगी, स्वागत के योग्य है : एक नेशनल लाइब्रेरी दिल्ली में है दूसरी कलकत्ते में है। लेकिन साथ ही मैं यह निवेदन करूंगा कि जो नई नेशनल लाइब्रेरी कायम हो, वह ऐसे मुकामों पर हों कि जहां अध्ययन की विशेष सुविधायें हों क्योंकि इन लाइब्रेरियों का उद्देश्य, जैसा कि बिल में बतलाया गया है, केवल किताबों का संग्रह ही नहीं है, बल्कि व्यक्तियों को स्कालर्शिप भी दिये जायेंगे और अध्ययन करने की सुविधायें भी खास तौर पर दी जायेंगी। अतएव यह आवश्यक है कि जहां पर अध्ययन के लिये अच्छे वातावरणयुक्त स्थान हों, ऐसे ही स्थानों पर लाइब्रेरीज कायम की जानी चाहियें।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि देश में कई भाषायें हैं और अच्छा यह होगा कि जिस रीजनल लेंग्वेज में किताबें छपें उसी रीजन में उस भाषा की लाइब्रेरी बनाई जाये। अगर वहां उस भाषा की किताबों का संग्रह होगा तो उस भाषा के जानने वाले और समझने वाले उस का ज्यादा अच्छा उपयोग कर सकेंगे और उससे लाभ उठा सकेंगे। दिल्ली में या कलकत्ते में दक्षिण की किसी भाषा की किताबों का संग्रह करना उतना उपयोगी सिद्ध नहीं होगा। इसलिये मुझे आशा है कि शासन चार लाइब्रेरियों के अलावा और भी अधिक लाइब्रेरी, जितनी भाषायें हैं, उतनी लाइब्रेरियां, खोलने का प्रयत्न करेगा। हां एक लाइब्रेरी में सभी भाषाओं का संग्रह होगा तो वह ज्यादा उपयुक्त होगा।

एक मेरे मित्र ने अभी बतलाया कि आज कल किताबों की बिक्री ज्यादा नहीं होती

है इसलिये विक्रेताओं से या प्रकाशकों से इस प्रकार से किताबें लेना उन के साथ ज्यादती करना होगा । मेरे विचार से अगर उन की किताबों की बिक्री नहीं होती है तो वह सब उस के घर पर ही पड़ी रहती हैं; उन में से तीन या चार किताबें देने में उन्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिये । और अगर बिक्री होती है तो उन को उन किताबों से काफी मुनाफा होता है । इतना मुनाफा होते हुए तीन चार किताबें देने में भी उन्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिये । इसलिये जो युक्ति आप ने बतलाई वह मुझे किसी तरह से भी युक्तिसंगत नहीं मालूम होती है ।

मुझे आशा है कि मैं ने जो सुझाव रक्खे हैं उन पर शासन अवश्य गौर करेगा ।

तथा अन्त में मैं अब अपनी तरफ से भी यह सुझाव देता हूं कि उज्जैन को ऐतिहासिक महत्व है और हमारे प्रधान मंत्रीजी ने समय समय पर उस का काफी ज़िक्र किया है । वहां पर यूनिर्वासिटी भी कायम हो रही है जैसा कि मध्य भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया है और वहां पर एक औरियेंटल इंस्टीट्यूट भी है जहां पर किताबों का काफी संग्रह है; और बहुत से मैन्युस्क्रिप्ट भी हैं । वहां रिसर्च का काम भी किया गया है । मैं चाहता हूं कि सरकार विचार करे कि वहां भी एक लाइब्रेरी खोली जाये क्योंकि यह स्थान हमारे देश के मध्य में है । उस के लिये मध्य भारत सरकार उपयुक्त सुविधायें देगी और उज्जैन की जनता भी देगी ।

श्री बंसल (झज्जर-रिवाड़ी) : मैं एक छोटा सा सुझाव देना चाहता हूं । खंड ४ में कहा गया है कि पुस्तकालयाध्यक्ष अथवा कार्यभार संभालने वाला पदाधिकारी प्रकाशकों को रसीद दे देगा । परन्तु मैं चाहता हूं कि वह सधन्यवाद पुस्तकों की वसूली की रसीद दें, क्योंकि यह भेंट के रूप में दी जायेंगी । यह शब्द साथ रखने से विधेयक में और सौन्दर्य आयेगा ।

डा० लंका सुन्दरम् (विशाखापटनम्) : मुझे प्रकाशन व्यापार का कुछ ज्ञान है और मैं ने स्वयं कुछ पुस्तकें लिखी हैं । इसलिये मैं दो तीन बातें कहना चाहता हूं ।

सब से पहले मुझे इस बात पर आपत्ति है कि पुस्तकालयों के नाम नहीं दिये गये हैं । सरकार को चाहिये कि कलकत्ता स्थित राष्ट्रीय पुस्तकालय के अलावा अन्य तीन पुस्तकालयों के नाम बताये ।

दूसरी बात यह है कि प्रादेशिक भाषाओं में लिखी गई पुस्तकें जैसे स्कूलों के बच्चों के लिये लिखी गई पुस्तकें, सम्बन्धित प्रदेश में ही रखी जायें और एक ही राष्ट्रीय पुस्तकालय पर यह थोप न दी जायें । ऐसा तब हो सकता है जब यह चार पुस्तकालय देश के भिन्न भागों में स्थापित किये जायें ।

श्री मोरे ने जो पुस्तकों के मूल्य के सम्बन्ध में तर्क दिया वह ठीक नहीं है । सब प्रकाशक तथा लेखक पुर्नविलोकन के लिये कई कई प्रतियां बिना मूल्य लोगों में बांटते हैं । यदि इस प्रकार ५०, ६० प्रतियां दी जाती हैं तो और चार प्रतियां देने से प्रकाशक अथवा लेखक पर कौन सा भार पड़ेगा । यदि मेरे सुझाव माने जायें, तो यह विधेयक बहुत ही आवश्यक है । मैं इस का समर्थन करता हूं ।

९ म० पू०

श्री जवाहरलाल नेहरू : जैसा डा० लंका सुन्दरम् ने कहा है, तीन और पुस्तकालयों के नाम भी बताये जाने चाहियें । कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय के अलावा एक संसद् का पुस्तकालय है और अन्य दो बम्बई तथा मद्रास में । उन्हों ने जो दूसरा सुझाव दिया है उस सम्बन्ध में अन्तिम खंड के अन्तर्गत सरकार को पुस्तकों के वितरण के बारे में

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

नियम बनाने का अधिकार है और सरकार उन के सुझाव पर विचार करेगी। यह बहुत ही अच्छा सुझाव है।

श्री राघवाचारी (पेनुकोंडा) : मैं इस विधेयक के सम्बन्ध में दो बातें कहना चाहता हूं। यह विधेयक इस धारणा पर आधारित है कि जो चीज भी छप जाये, उसे रक्षित रखा जाये। मेरे विचार में यह सिद्धान्त बहुत खतरनाक है क्योंकि इस स्वतन्त्रा के जमाने में सब प्रकार की पुस्तिकायें जिन में चुनाव सम्बन्धी पुस्तिकायें और निन्दात्मक पुस्तिकायें भी सम्मिलित हैं, प्रतिदिन प्रकाशित की जाती हैं। यदि मैं अपने पड़ौसी को गाली देने के लिये एक पुस्तिका प्रकाशित कर देता हूं, तो इस को भी राष्ट्रीय पुस्तकालय में स्थान दिया जायेगा।

दूसरी बात यह है कि जब विधि के अन्तगत सब को एक चीज करनी पड़ेगी, नहीं तो दंड सहना पड़ेगा, तो इस सम्बन्ध में इस बात की जांच करनी पड़ेगी कि कौन सा अभियोग चलाया जाये।

डा० एम० एम० दास : मैं उन माननीय सदस्यों का जिन्हों ने इस वाद विवाद में भाग लिया है बहुत आभारी हूं। यद्यपि प्रक्रिया के छोटे छोटे मामलों पर कुछ आलोचना की गई है तथापि मैं यह कह सकता हूं कि सदन ने इस विधेयक का समर्थन किया है।

मैं अब इन आलोचनाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा। श्री रेड्डी ने कहा है कि यदि सब प्रकाशन प्रत्येक पुस्तकालय में इकट्ठे किये जायें, तो स्थान की तंगी होगी और सब प्रकाशनों को प्रत्येक पुस्तकालय में इकट्ठा करने की आवश्यकता भी नहीं है। सरकार ने इस बात पर विचार किया है और वह इस निष्कर्ष पर पहूंची है कि सरकार की नियम बनाने की शक्ति के अधीन इस प्रकार के नियम बनाये जायेंगे कि ये सब प्रकाशन केवल एक पुस्तकालय—संभवतः कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में—इकट्ठे किये जायेंगे। शेष पुस्तकालयों में केवल वे प्रकाशन भेजे जायेंगे, जो वहां रखने लायक होंगे। इन तीन पुस्तकालयों में कोई घटिया प्रकाशन नहीं भेजे जायेंगे।

माननीय मित्र श्री बंसल ने प्रस्ताव रखा है कि "प्राप्ति" शब्द के पश्चात् दो शब्द जोड़ दिये जायें। हम पूर्ण सहमत हैं। संविधि द्वारा निश्चित संविध्यात्मक आभार से कोई इन्कार नहीं कर सकता। हम प्रकाशक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें अथवा नहीं, आभार तो अवश्य रहेगा।

डा० लंकासुन्दरम् ने अनेक बिन्दु उपस्थित किये हैं। उन्होंने कहा है कि चारों पुस्तकालयों का उल्लेख नहीं किया गया। प्रधान मंत्री ने स्थिति की व्याख्या कर दी है। मैंने भी कुछ कह दिया है। कलकत्ता में नेशनल लाइब्रेरी पहले से ही है। दिल्ली में एक पुस्तकालय की स्थापना होने वाली है। दूसरी दो के सम्बन्ध में निर्णय किया जायेगा।

माननीय सदस्य श्री राघवाचारी ने कहा कि चुनाव आदि से सम्बन्धित साहित्य के संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है। चुनाव समाप्त होने पर हमारे लिये उनका कोई महत्व नहीं है। लेकिन भावी पीढ़ियों के लिये यह उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

अध्यक्ष महोदय : प्रश्न यह है कि :

> "राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों को पुस्तकें प्रदान करने का उपबन्ध करने वाले विधेयक पर विचार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अध्यक्ष महोदय : अब हम विधेयक पर खंड वार विचार करेंगे ।

खण्ड २—(परिभाषायें)

श्री एन० बी० चौधरी (घाटल) : मैं "लीथोग्राफ" शब्द के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण चाहता हूं कि क्या इसमें चक्रलेखित्र विषय भी सम्मिलित हैं। हम पुस्तकालयों में पुस्तकों की प्रतियां रखने का समर्थन करते हैं लेकिन प्रत्येक चक्रलेखित्र (सायक्लोस्टायल) सामग्री के संग्रह की आवश्यकता नहीं है ।

डा० एम० एम० दास : भारतीय सर्वाधिकार अधिनियम, १९१४ और प्रेस तथा पंजीकरण अधिनियम, १८६७—दोनों में ही "लीथोग्राफ" शब्द का उल्लेख है ।

श्री एन० बी० चौधरी : मैंने उसका उल्लेख कर दिया है ।

अध्यक्ष महोदय : उनका प्रश्न है कि सायक्लोस्टायल सामग्री छपेगी अथवा नहीं ?

डा० एम० एम० दास : नहीं, यह सम्मिलित नहीं है ।

अध्यक्ष महोदय : प्रश्न यह है कि :

"खण्ड २ विधेयक का अंग बने ।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

खण्ड २ विधेयक में जोड़ दिया गया ।

खण्ड ३—(सार्वजनिक पुस्तकालयों को पुस्तकें सुपुर्द करना)

अध्यक्ष महोदय : खण्ड ३

श्री एस० एस० मोरे : क्या मैं इस खण्ड के सम्बन्ध में तनिक सा स्पष्टीकरण मांग सकता हूं ?

अध्यक्ष महोदय : कौनसा खण्ड ?

श्री एस० एस० मोरे : खण्ड ३ ।

अध्यक्ष महोदय : पहले मुझे संशोधन निबटाने दीजिये ।

श्री किरोलिकर (दुर्ग) : मैं प्रस्ताव करता हूं :

पृष्ठ १ पंक्ति २३,—

"इसके विपरीत कोई करार होते हुए भी" का लोप कर दिया जाय ।

मेरी राय में इन शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है ।

डा० एम० एम० दास : खण्ड को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये यह शब्द आवश्यक है । यदि उक्त शब्द वापस ले लिये जायें तो सम्पूर्ण खण्ड अर्थहीन हो कर विधेयक का अभिप्राय ही समाप्त हो जायेगा । इस संशोधन का अर्थ यूं है : यदि प्रकाशक लेखक से इस प्रकार का समझौता कर लेता है कि किसी को भी मुफ्त में प्रति नहीं दी जायेगी तो यह वैध है और हम पुस्तक की एक भी प्रति प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इस संशोधन को स्वीकार कर लेने से विधेयक का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है ।

श्री किरोलिकर : लेखक और प्रकाशक का समझौता हम पर किस प्रकार लागू हो सकता है ?

अध्यक्ष महोदय : बच निकलने की युक्ति को समाप्त करने के लिये ही उक्त शब्द आवश्यक हैं। क्या माननीय सदस्य अपने संशोधन पर दृढ़ हैं ?

श्री किरोलिकर : मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता हूं ।

श्री एस० एस० मोरे : आप जानते हैं 'प्रकाशक' शब्द का प्राविधिक अर्थ है । इसका अर्थ मुद्रण ही नहीं है । मेरा विचार है इसमें वह सब सामग्री भी आनी चाहिये जो भारत के बाहर छपी है लेकिन जिनकी बिक्री अर्थात् प्रकाशन इस देश में हुआ है । मेरा विचार है कि प्रस्तुत अधिनियम को इतना व्यापक होना चाहिये कि देश के बाहर प्रकाशित होने वाले सब प्रकाशन उसमें सम्मिलित कर लिये जायें।

[श्री एस० एस० मोरे]

इस कार्यवाही से हमारे पुस्तकालय उसी सीमा तक समृद्ध हो जायेंगे ।

श्री बिस्वास : शब्द "प्रकाशित" है, "मुद्रित" नहीं है। एक पुस्तक भारत के बाहर छपी है किन्तु यदि यह भारत में प्रकाशित हुई है तो केवल इस बात के कारण कि यह अन्य स्थानों पर भी प्रकाशित हुई है प्रकाशक इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित की गई शर्तें को पूरा करने से विमुक्त नहीं हो जाता ।

अध्यक्ष महोदय : प्रश्न यह है कि :
"खण्ड ३ विधेयक का अंग बने"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

खण्ड ३ विधेयक में जोड़ दिया गया ।

खण्ड ४—(दी गई पुस्तकों की रसीद)

श्री एन० बी० चौधरी : मैं पुस्तकों की प्राप्ति के बारे में कुछ स्पष्टीकरण चाहता हूं। इस खण्ड में कहा गया है कि पुस्तकालय का प्रभारी व्यक्ति या उसके द्वारा अधिकृत कोई अन्य व्यक्ति पुस्तक प्राप्त करेगा । यह बात स्पष्ट होनी चाहिये कि क्या प्रकाशक को पुस्तक स्वयं आ कर देनी चाहिये या इसे रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेज देना काफी होगा । यदि पुस्तक रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेजी जाये तो उसकी डाक की रसीद को इस बात का पर्याप्त प्रमाण समझना चाहिये कि पुस्तक प्राप्त हो चुकी है, क्योंकि पुस्तक के एक मास के अन्दर अन्दर न भेजे जाने की अवस्था में, प्रकाशक के लिये दंड की व्यवस्था की गई है । संभव है कि विलम्ब प्रकाशक ने न किया हो बल्कि डाक व्यवस्था के कारण हुआ हो । अत: ऐसे मामलों में प्रकाशक को उत्तरदायी नहीं ठहराना चाहिये ।

डा० एम० एम० दास : यह आवश्यक नहीं है कि पुस्तकें पुस्तकालय में स्वयं जाकर दी जायें । ये डाक द्वारा भेजी जा सकती हैं और डाक की रसीद अवश्य इसका प्रमाण है । इसके अतिरिक्त पुस्तकालयाध्यक्ष या उसके द्वारा अधिकृत किया गया व्यक्ति भी प्रकाशक को एक रसीद भेजेगा ।

अध्यक्ष महोदय : प्रश्न यह है कि :
"खण्ड ४ विधेयक का अंग बने"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

खण्ड ४ विधेयक में जोड़ दिया गया ।

खण्ड ५ और ६ विधेयक में जोड़ दिये गये ।

नया खण्ड ६क—(सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तकें)

डा० एम० एम० दास : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

> "6A. *Application of Acts to books published by Govt.*—This Act shall also apply to books published by or under the authority of the Govt. other than books meant for official use only."

पृष्ठ २ में पंक्ति ३५ के बाद निम्न जोड़ दिया जाये —

> ["६क. अधिनियम का सरकार द्वारा प्रकाशित की गई पुस्तकों के सम्बन्ध में लागू होना—यह अधिनियम उन पुस्तकों पर भी जो कि केवल सरकारी काम में प्रयोग किये जाने वाली पुस्तकों को छोड़ कर, सरकार द्वारा या सरकार के आदेशानुसार प्रकाशित की गई हों, लागू होगा"]

इस संशोधन के द्वारा हम राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार को इस विधान के कार्य क्षेत्र में ला रहे हैं ।

अध्यक्ष महोदय द्वारा उक्त संशोधन मतदान के लिये रखा गया तथा स्वीकृत हुआ।

नया खण्ड ६क विधेयक में जोड़ दिया गया
खण्ड ७ विधेयक में जोड़ दिया गया।
खण्ड १, नाम और अधिनियम सूत्र विधेयक में जोड़ दिये गये।

डा० एम० एम० दास : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

"विधेयक को संशोधित रूप में पारित किया जाये"

अध्यक्ष महोदय : प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ।

श्री एन० बी० चौधरी : हम इस देश में सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित करने के विचार का स्वागत करते हैं। किन्तु सरकार को यह आश्वासन देना चाहिये कि जनता को इन पुस्तकालयों से पुस्तकें लेने का पर्याप्त अवसर मिलेगा और इनका उचित प्रबन्ध किया जायेगा।

अब जब कि हमें देश में प्रकाशित होने वाली सब पुस्तकों की प्रतियां प्राप्त हो रही हैं हम यह भी आशा करते हैं कि सरकार इन पुस्तकालयों में अधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों की एक से अधिक प्रतियां रखने की व्यवस्था करेगी, ताकि जनता इन से लाभ उठा सके।

इतने बड़े देश में केवल इन चार सार्वजनिक पुस्तकालयों का होना पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक बड़ा पुस्तकालय होना चाहिये और इसके साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थान स्थान पर पुस्तकालय होने चाहियें। इस अवसर पर हम यह मांग करते हैं कि इन सार्वजनिक पुस्तकालयों में जनता के पढ़ने के लिये पर्याप्त सुविधायें होनी चाहियें। एक योजनाबद्ध पुस्तकालय आन्दोलन भी शुरू करना चाहिये और सरकार को देश भर में पुस्तकालय स्थापित करने के लिये पर्याप्त धन देना चाहिये।

श्री जोकीम आल्वा (कनारा) : सरकार ने इस विधेयक को समय से पूर्व प्रस्तुत किया है। हमने कोई वास्तविक पुस्तकालय आन्दोलन तो अभी तक चलाया नहीं है किन्तु हम यह चाहते हैं कि पुस्तकें तीन चार राष्ट्रीय पुस्तकालयों में पहुंचनी शुरू हो जायें। पुस्तकालय का किसी राष्ट्र के जीवन में बहुत बड़ा महत्व होता है।

इन पुस्तकालयों की स्थापना करके हम एक बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। हमारे पूर्वजों को भी पुस्तकालयों में रुचि हुआ करती थी और हमारे पुराने धर्म ग्रन्थ प्रायः भोजपत्रों पर अंकित पाये जाते हैं, और इसी रूप में हम तक पहुंचे हैं।

हमारे देश में चलते पुस्तकालयों की बहुत आवश्यकता है किन्तु अभी तक इस ओर कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। शिक्षा मंत्रालय जहां अन्य कितने ही कार्यक्रमों पर व्यर्थ खर्च कर रहा है वहां उसे इस काम को भी उठाना चाहिये, जिससे हमारे सभी नागरिकों को पुस्तकें पढ़ने का अवसर प्राप्त हो सके।

डा० एम० एम० दास : मेरे मिदनापुर के माननीय मित्र ने कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। उन्होंने कहा है कि कलकत्ता का राष्ट्रीय पुस्तकालय शहर से हटा कर कुछ मील दूर पर कर दिया है। मैं बताना चाहूंगा कि यह पुस्तकालय शहर की नगरपालिका के क्षेत्र में ही है। कलकत्ता बड़ा शहर होने के कारण यद्यपि पुस्तकालय कुछ दूर अवश्य हो गया है किन्तु फिर भी है अभी शहर के अन्दर ही बाहर नहीं।

उन्होंने यह भी कहा है कि ये चार पुस्तकालय किसी भी दशा में पर्याप्त नहीं हैं। मैंने इसी सदन में उन माननीय सदस्यों के अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये हैं जो पुस्तकालय को वहां से हटाने में रुचि रखते थे, और मैं पहले ही बता चुका हूं कि केन्द्रीय सरकार ने योजनायें तैयार कर ली हैं जिनको राज्य सरकारें कार्या-

[डा० एम० एम० दास]

न्वित कर रही हैं। पुस्तकालयों का सिकास करना एक अत्यन्त आवश्यक विषय है और पंचवर्षीय योजना में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। अतः माननीय सदस्य जो कुछ चाहते हैं वह सरकार कर ही रही है। उन्होंने जिस नीति की सिफारिश की है, सरकार उसको कार्यान्वित कर रही है।

श्री के० के० बसु : हम चाहते हैं कि वह और अधिक शक्ति से चले।

डा० एम० एम० दास : कनारा के श्री जोकीम आल्वा ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव रखे हैं। मैं आशा करता हूं कि भारत सरकार पुस्तकालयों के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करने के समय उन सुझावों को ध्यान में रखेगी।

अध्यक्ष महोदय : प्रश्न यह है :

"कि विधेयक को संशोधित रूप में पारित किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) विधेयक

गृह-कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू): मैं प्रस्ताव करता हूं : *

"कि भाग "क" राज्यों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सेवा की कतिपय शर्तों का विनियमन करने वाले विधेयक पर विचार किया जाये।"

विधेयक का उद्देश्य उद्देश्य तथा कारणों के विवरण में स्पष्ट दिया हुआ है।

[**पंडित ठाकुर दास भार्गव** पीठासीन हुये]

इस विषय का इतिहास वास्तव में १९२२ से आरम्भ होता है जब कि अवकाश के अधिकारों तथा अन्य आकस्मिक मामलों को प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में आदेश पारित किये गये थे। तत्पश्चात् भारत सरकार अधिनियम, १९३५ आया, जब कि सारे मामले में संशोधन किया गया था, और १९३७ में इन सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में भी वेतन, पेन्शन, अनुपस्थिति के अधिकार, अवकाश आदि विषयक आदेश ही लागू किये गये थे। जैसा कि सदन को विदित है, संविधान बनाते समय उसमें यह व्यवस्था कर दी गई थी कि ये द्वितीय तालिका की भांति ही रहेंगे, जब तक कि संसद् इसमें हस्तक्षेप नहीं करता और इनके लिये किसी आधार की व्यवस्था नहीं करता है।

वास्तव में संक्षेप में विधेयक का उद्देश्य यह है कि यदि कोई न्यायाधीश नियमानुकूल पूर्णरूपेण पेन्शन पाने के योग्य नहीं हो जाता, तो यह तथ्य कि उसने न्यायाधीश के रूप में कुछ कम समय तक कार्य किया है अतः उसे ६००० रु० वार्षिक अथवा ५०० रु० मासिक न्यूनतम पेन्शन मिलनी चाहिये। यह साधारण नियम है और तब तक लागू रहेगा जब तक संसद् यह विधेयक पारित नहीं कर देती कि सेवा का न्यूनतम काल सात वर्ष होना चाहिये। यदि कोई न्यायाधीश सात वर्ष तक कार्य नहीं करता है, तो वह पेन्शन पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। मैं भूतकाल, १९५० के पूर्व के बहुत से मामलों को जानता हूं, जिनमें न्यायाधीशों ने इस पद को दो, तीन अथवा चार वर्षों के लिये ही स्वीकार किया था और जो बुढ़ापे के कारण रिटायर हो गये थे, उनको कुछ भी पेन्शन नहीं मिली थी। कुछ वर्ष पूर्व उन न्यायाधीशों ने विशेषकर इस सम्बन्ध में सरकार के पास अभ्यावेदन किया था, जिन्होंने १९५० से इस आधार पर त्यागपत्र दिया था कि विधान में, उनके वकालत आदि करने के अधिकार पर कुछ नियंत्रण लगाये जा रहे हैं। उस समय यह उचित सोचा गया था कि यदि राष्ट्रपति किसी को उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करता है, और उस

*राष्ट्रपति की सिफारिश से प्रस्ताव रखा गया।

व्यक्ति को संविधान के अनुसार भारत के किसी भी उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय में वकालात करने से रोक दिया जाता है, ऐसी दशा में न्यायोचित यही होगा कि उसे कुछ न्यूनतम पेन्शन मिलनी चाहिये। अतः अब प्रस्तावित परिवर्तन यह है कि उसे न्यूनतम पेन्शन या तो ६००० रु० प्रति वर्ष अथवा ५०० रु० प्रति माह मिलनी चाहिये। अन्यथा नियम वे ही रहते हैं।

यह विषय टेक्निकल हो सकता है, किन्तु नियम यही हैं। यदि किसी न्याधीश ने न्यूनतम काल सात वर्ष से अधिक समय तक कार्य किया है, तो उसकी पेन्शन ५००० रु० प्रति वर्ष के हिसाब से लगाई जायेगी और यदि वह साधारण न्यायाधीश रहा है तो उसकी इस पेन्शन राशि में प्रति वर्ष सेवा के लिये ४७० रु० और जोड़ दिये जायेंगे, अर्थात् यदि कोई न्यायाधीश सात वर्षों तक कार्य करता है तो उसे पांच हज़ार रुपया प्रति वर्ष तथा ४७० रु० का सात गुना रुपया और मिलेगा जिसका योग लगभग ८००० रुपया होता है। यदि वह आठ वर्षों तक कार्य करता है तो उसकी मूल पेन्शन यहां तक बढ़ जाती है।

मुख्य न्यायाधीश के सम्बन्ध में भी कुछ परिवर्तन हुआ है और उस के पक्ष में एक भिन्न दर जारी की गई है। माननीय सदस्यों को विदित होगा कि पहले तथा अब भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति केवल वकीलों में से ही नहीं की जाती है। प्राचीन शासन-काल में, एक-तिहाई भारतीय असैनिक सेवा से, एक-तिहाई ब्रिटिश विधि-जीवी वर्ग के सदस्यों में से तथा एक-तिहाई भारतीयों में से इस पद के लिये चुने जाते थे। आजकल की शासन-व्यवस्था में प्रान्तीय न्यायिक सेवा तथा भारतीय विधिजीवी वर्ग के सदस्यों में से लिये जाते हैं।

अब भारतीय असैनिक सेवा समाप्त हो गई है, उस के स्थान पर सभी राज्यों में एक उच्च न्यायिक सेवा स्थापित कर दी गई है। विभिन्न उच्च न्यायालयों में अनुपात में भिन्नता है, किन्तु सभी जगह 'सेवाओं' से पदोन्नति के द्वारा होने वाले न्यायाधीशों की काफी संख्या है। ये 'सेवाओं' से लिये जाने वाले न्यायाधीश 'सेवा' से ही अपना जीवन प्रारम्भ करते हैं। मान लीजिये कि वे प्रान्तीय न्यायिक सेवा के सदस्य हैं, तो जैसा कि आप को विदित होगा, वे मुंसिफ के पद से अपनी सेवा प्रारम्भ कर सकते हैं, कुछ वर्षों तक अधीन-न्यायाधीश रह सकते हैं, तत्पश्चात् ज़िला न्यायाधीश बनते हैं और उस के दो-चार वर्षों के बाद वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हो जाते हैं। यहां से उन को पेंशन मिलती है, जिस समय से वे उच्च न्यायालय के पद पर कार्य करने लगते हैं, उन को अलग-अलग पेंशनें मिल सकती हैं। अतः जहां तक वेतन का सम्बन्ध है, यह वास्तव में एक पदोन्नति है। ज़िला तथा सेशन न्यायाधीश को पदोन्नति से ज़िले के न्यायाधीश बनने तक में २००० रु० तक वेतन मिल सकता है। ज्योंही उस की नियुक्ति उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर हो जाती है, उसे ३,५०० रु० वेतन मिलने लगता है। ठीक यही बात भारतीय असैनिक सेवा से आने वाले न्यायाधीश के सम्बन्ध में भी लागू होती है। मैं सदन का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहूंगा कि भारतीय असैनिक सेवा से कुछ लोग आते हैं, यद्यपि यह अब समाप्तप्राय है, अन्य सेवाओं से भी कुछ लोग आते हैं—प्रान्तीय न्यायिक सेवा तथा विधि-जीवी वर्गों आदि से आने वाले लोगों की भिन्न-भिन्न श्रेणियां होने के कारण पेंशन दरें भी अलग-अलग हैं। हमें इन के लिये अलग-अलग व्यवस्था करनी पड़ती है। जहां तक पदोन्नति के द्वारा होने वाले न्यायाधीशों का सम्बन्ध है, इन के विषय में न्यूनतम पेंशन का कोई प्रश्न

[डा० काटजू]

नहीं है, क्योंकि उन को पेंशन इस कारण मिलती है कि वे इतने दिनों से राज्य की सेवा करते आ रहे हैं । न्यूनतम पेंशन का प्रश्न तो उन लोगों के सम्बन्ध में उठता है जो विधिजीवीवर्ग में से नियुक्त होते हैं । यह कहा जा सकता है : 'आप ५९ अथवा ५९ १/२ वर्षीय व्यक्ति को छः मास के लिये न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर सकते हैं और उस के शेष जीवन-काल के लिये ५०० रु० मासिक दे सकते हैं ।' यह संगत विचार है, और मैं सदन को बताना चाहूंगा कि राष्ट्रपति इन नियुक्तियों को करने के समय इस बात पर विचार करता है क्योंकि हम इस बात के इच्छुक रहते हैं कि जिस व्यक्ति को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है, कुछ वर्षों अर्थात् चार-छः वर्षों तक कार्य कर सकें—भले ही यह काल सात वर्ष से कम हो—किन्तु यह केवल कुछ मासों अथवा एक-दो वर्षों का साधारण प्रश्न नहीं होना चाहिये । यह एक नई धारा है । अन्यथा व्यवहारिक रूप से यह विद्यमान प्रथा को ही दूसरे ढंग से प्रकट कर देना है, जो भली भांति कार्य कर चुकी है और जिस के पीछे ३० वर्ष का अनुभव सन्निहित है ।

एक बात मैं और कह देना चाहता हूं कि कुछ अतिरिक्त सुविधायें —जैसे चिकित्सा आदि की दी जाती हैं—जिन का अब नियमों द्वारा विनियमन कर दिया गया । किन्तु वे नियम अब समाप्त हो गये हैं,—इसलिये हम ने उन को इस विधेयक में सम्मिलित कर लेना अधिक उपयुक्त समझा है—वे हैं यात्रा-भत्ते, चिकित्सा-सुविधायें आदि । उस संशोधन से जिस की पूर्व सूचना दी जा चुकी है, अवकाश के सम्बन्ध में बहुत कुछ ध्यान आकर्षित किया जा चुका है । जब उन संशोधनों पर विवाद होगा, तब मैं उन के विषय में विस्तृत विचार करूंगा किन्तु मैं सदन का ध्यान उस विशेषता की ओर आकर्षित करूंगा कि जिस से उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश को भारत के अन्य लोक-सेवक से अलग समझा जाता है । अंगरेज़ों ने भारत में यह जो प्रथा चला रखी है—जिसे हम ग्रीष्मावकाश या वार्षिक अवकाश कहते हैं—यह वार्षिक अवकाश १० सप्ताहों तक चलता है, कुछ न्यायालयों में न्यायाधीशों ने स्वेच्छा से इस को घटा कर दो मास कर दिया है—अर्थात् दस दिनों की इस में कमी कर दी है । भारत में और किसी भी लोक-सेवक को पूरे वेतन पर ग्रीष्मावकाश अथवा वार्षिक अवकाश नहीं दिया जाता है । मुझे इस पर कोई ईर्ष्या नहीं वरन् मैं तो विद्यमान प्रक्रिया की बात कर रहा हूं । स्वभावतः न्यायाधीश कहते हैं कि वे अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करते हैं इस में संलग्नता एवं अधिक मानसिक परिश्रम करना पड़ता है । मैं मुख्य न्यायाधिपति की टिप्पणी को पढ़ता हूं जिस में उस ने कहा है कि अवकाश के पश्चात् न्यायाधीश जब कार्य करना आरम्भ करता है तो वह पूर्ण स्वस्थ एवं स्फूर्तिमय होता है किन्तु ९१/२ या १० मास तक कार्य करने पर उस की शक्ति कम हो जाती है ।

श्री एस० एस० मोरे (शोलापुर) : वह भी मंत्री की भांति हैं ।

श्री ए० के० गोपालन (कन्नानूर) : अध्यापकों को भी तो ग्रीष्मावकाश मिलता है ।

डा० काटजू : उन्हों ने बताया कि यह अत्यावश्यक है । मैं उस की चर्चा करना नहीं चाहता किन्तु आप दोनों लाभ नहीं उठा सकते । आप यह नहीं कह सकते कि भारतीय असैनिक सेवा अथवा भारतीय प्रशासन-सेवा

आदि सभी के लोग एक माह का वेतन पाने का अधिकार रखते हैं अथवा अन्य इसी प्रकार की कोई बात नहीं कह सकते । दो माह का अवकाश तो अवश्य मिलता है किन्तु उस का परिणाम यह होता है कि और अवकाश ज़रा कठिनता से मिल पाते हैं । दूसरा मूल प्रतिबन्ध यह है कि अवकाश बंट जाता है । चाहे आप को चार मास का अवकाश मिल जाय, प्रथम मास का आप को ३,५०० रु० मूल वेतन मिल जायगा । द्वितीय तथा तृतीय मास में यदि आप को अवकाश मिल सकता है तो यह पूरे वेतन का अवकाश समझा जायगा और २,२०० रु० वेतन मिलेगा । इस के पश्चात् अवकाश अर्द्ध-वेतन पर मिलेगा अर्थात् ११०० रु० वेतन मिलेगा । कुछ संशोधन नियमों को ढीला करने के लिये बनाये गये हैं । चूंकि हम ने इस की संविधान से नकल की है इसलिये मैं सदन का ध्यान इस ओर आकर्षित कर रहा हूं । इस का उल्लेख मुझे विश्वास है कि उद्देश्य तथा कारणों के विवरण में किया जा चुका है । भाग 'घ' की द्वितीय तालिका में 'वास्तविक सेवा' शब्दों की परिभाषा दी हुई है और संविधान में 'वास्तविक सेवा' की जो परिभाषा दी गई है, इस विधेयक में वही अक्षरशः रखी गई है । यदि अधिक नहीं तो कम से कम ३३ वर्षों से यही प्रथा चल रही है, और सरकार ने सोचा कि हमारा मार्ग-प्रदर्शन करने के लिये यह सर्वोत्तम नीति है और संविधान निर्माताओं ने भी वे ही बातें स्वीकार की हैं जो उन के लिये काफी अच्छी थीं । छुट्टी से सम्बन्धित नियम बड़े उदार हैं । न्यायाधीश बहुत परिश्रम करते हैं । न्यायाधीशों के बारे में सदन में चर्चा करना अच्छा नहीं प्रतीत होता और हमें उन के पद की प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिये । कहा जाता है कि वे शनिवार और रविवार को भी काम करते हैं और उन्हें सदैव न्याय सम्बन्धी बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करना पड़ता है । सभी प्रकार की छुट्टियों को छोड़ कर उन्हें न्यायालयों में वर्ष भर में १७५ दिन आना पड़ता है । इसलिये मैं समझता हूं कि हमें उन की छुट्टी तथा निवृत्ति वेतन सम्बन्धी नियमों को असाधारण रूप से और उदार नहीं बनाना चाहिये क्योंकि इन मामलों में सदन का दृष्टिकोण सदा ही कुछ कड़ा रहा है ।

यह कहा जाता है कि विधिजीवी न्यायाधीश पद पर नियुक्त हो कर बड़ा त्याग करते हैं । यह ठीक है । यह एक पुरानी परम्परा चली आ रही है कि इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा भारत में जब इस व्यवसाय के किसी व्यक्ति को राज्य सर्वोच्च अधिकारी, उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करता है तब इस को अपने कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार करता है, चाहे इस में उस को आर्थिक हानि ही क्यों न हो । ऐसा करने से राज्य उस के ज्ञान तथा अनुभव से लाभ उठा सकता है ।

वेतन निर्धारित करना संसद् का काम है तथा ३,५०० रुपये का वेतन भारत जैसे देश के लिये ठीक ही है । मुझे कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास जैसे शहरों का तो पता नहीं किन्तु भारत में अन्यत्र वकीलों ने अपने आप को देश की परिवर्तित स्थिति के अनुकूल बना लिया है और जमींदारी समाप्त हो जाने से उन की अत्यधिक आमदनी के अवसर समाप्त हो जायेंगे । मुझे और अधिक नहीं कहना है ।

श्री के० के० बसु (डायमण्ड हार्बर) : माननीय मंत्री ने कहा है कि कुछ ऐसे न्यायाधीश हैं जिन्हों ने न्यायाधीश के रूप में कुछ काल तक काम किया किन्तु उन्हें न्यूनतम निवृत्ति वेतन भी नहीं मिल सका । क्या वह ऐसे न्यायाधीशों की संख्या बता सकते हैं ? दूसरी बात मैं यह जानना चाहता हूं कि न्यायाधीशों का मासिक वेतन ३,५००

[श्री के० के० बसु]

रुपय या ४,००० रुपये है। मेरी तीसरी बात यह है कि इन न्यायाधीशों को किस प्रकार की चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें दी जाती हैं। कलकत्ता उच्च न्यायालय में भारतीय न्यायाधीशों को इस प्रकार की सुविधायें नहीं दी जाती थीं। मैं सेवाओं में से लिये गये न्यायाधीशों के बारे में नहीं जानता।

डा० काटजू : जैसा कि अनुच्छेद २२१ म दिया हुआ है, वेतनों में ४,००० रुपये तथा ३,५०० रुपये का यह अन्तर, उन के अधिकार और विशेषाधिकार वेतन क्रम, छुट्टी, निवृत्ति वेतन आदि वैसे ही जारी रहेंगे। अतः संविधान प्रवर्तन से पूर्व नियुक्त न्यायाधीश ४,००० रुपये वेतन पायेंगे और उस के बाद से नियुक्त न्यायाधीश ३,५०० रुपये वेतन पायेंगे। माननीय सदस्य ने जिन न्यायाधीशों की संख्या पूछी है मुझे उन की यथार्थ संख्या नहीं मालूम किन्तु मैं समझता हूं कि उन की संख्या तीन या चार होगी। यदि विधिजीवी संघ का कोई सदस्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाता है तो उसे सेवाओं में लिये गये न्यायाधीशों के समान ही चिकित्सा सुविधायें मिलती हैं।

श्री के० के० बसु : आप ने कहा था 'वर्तमान प्रथा' और दशाओं के अनुसार उन्हें चिकित्सा सुविधायें दी जाती हैं। किन्तु जहां तक मुझे मालूम है कलकत्ता उच्च न्यायालय में विधिजीवियों को इस प्रकार की सुविधायें नहीं दी जाती हैं।

डा० काटजू : इस सम्बन्ध में भारत-सचिव ने जो नियम बनाये थे हम उन्हीं को ठीक ठाक करना चाहते हैं।

विधि तथा अल्पसंख्यक-कार्य मंत्री (श्री बिस्वास) : संविधान लागू किये जाने से पूर्व तथा स्वतंत्रता मिलने से पूर्व नियुक्त किये गये न्यायाधीशों को ये चिकित्सा सुविधायें मिलती थीं किन्तु मैं समझता हूं कि भारतीय न्यायाधीशों ने इन सुविधाओं का लाभ नहीं उठाया।

डा० काटजू : कलकत्ता में बहुत से डाक्टर हैं और ये न्यायाधीश अपनी पसन्द के किसी भी डाक्टर से चिकित्सा करवा सकते हैं। विधि मंत्री यह सब बतला सकते हैं।

श्री सत्येन्द नारायण सिंह (गया पश्चिम): इस विधेयक के द्वारा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा दशाओं को निर्धारित किया जा रहा है। इस में एक यह अच्छा परिवर्तन किया गया है कि जो न्यायाधीश सेवाओं से नहीं लिये गये हैं उन्हें भी प्रति वर्ष न्यूनतम निवृत्ति वेतन ६,००० रुपये मिला करेगा चाहे वे अपनी सेवा के सात वर्ष पूरे न भी कर सके हों। मैं इस उपबन्ध का स्वागत करता हूं क्योंकि वे व्यक्ति भी जो बहुत समय से वकालत कर रहे हों और जिन की आयु भी काफी हो गई हो और जो ६० वर्ष की आय तक सात वर्ष तक सेवा न कर सकते हों, साआनी से नियुक्त किये जा सकेंगे। मैं गृह मंत्री को यह बताना चाहता हूं कि सेवा की दशायें कुछ भी हों किन्तु हमें उपयुक्त प्रकार के न्यायाधीश नहीं मिल पा रहे हैं। उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री चन्द्र शेखर अय्यर ने यह कहा था कि उच्च न्यायालयों में बचा हुआ काम इसलिये पड़ा रहता है कि जो अधिक योग्य न्यायाधीश नहीं होते हैं वे महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर शीघ्र निर्णय नहीं कर पाते और इसीलिये इन मामलों को निबटाने में विलम्ब होता है। १९५० के बाद नियुक्त किये गये न्यायाधीशों के बारे में गम्भीर आलोचना है और सरकार को इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

मैं समझता हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन इस प्रकार के होने

चाहियें जिस से वे यह अनुभव न कर सकें कि वे अपने अन्य विधिजीवी साथियों से कम वेतन पा रहे हैं । न्यायाधीशों को नियुक्त करने के तरीके का भी इस बात पर प्रभाव पड़ता है कि किस प्रकार के न्यायाधीश नियुक्त किये जाते हैं तथा इस के साथ उन के आचरण पर भी प्रभाव पड़ता है । संविधान निर्माता यह चाहते थे कि न्यायाधीश कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्त रहें । इसीलिये उस में यह दिया हुआ है कि न्यायाधीश नियुक्त करते समय राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा राज्यों के राज्यपालों की सलाह से तथा अवर न्यायाधीश की नियुक्ति के लिये राज्य सरकार की सम्मति लेंगे । किन्तु इस मामले में राष्ट्रपति को गृह मंत्रालय तथा राज्यपाल को राज्य-सरकार सम्मति देते हैं । एक मामले में तो राष्ट्रपति ने राज्य सरकार के सुझाव को वापिस भेज दिया किन्तु राज्य सरकार ने बार बार उसी का नाम भेजा । इस प्रकार वे राज्य सरकारों के नाम निर्देशित हो जाते हैं ।

मैं श्री चन्द्र शेखर अय्यर की इस बात से सहमत हूं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्य सरकारों या गृह मंत्रालय द्वारा नहीं की जानी चाहिये । इस मामले में राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह से नियुक्तियां करनी चाहियें । इसीलिये मेरा माननीय गृह मंत्री से निवेदन है कि वह सब से अधिक उपयुक्त व्यक्तियों को नियुक्त करने के लिये इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें और यदि उन के नियुक्त करने के तरीके से कोई रुकावट होती हो तो वह इस में परिवर्तन कर दें ।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि सरकार को उच्च न्यायालय न्यायाधीशों की एक अखिल भारतीय पदालि स्थापित करने पर विचार करना चाहिये । ऐसा होता है कि उच्च न्यायालयों में विधिजीवियों में से न्यायाधीश नियुक्त किये जाते हैं और हो सकता है कि उन में योग्य व्यक्ति न मिल सकें किन्तु फिर भी किन्हीं कारणों से हम उस विधिजीवी संघ को खाली नहीं करना चाहते । ऐसे मामलों में हम अन्य राज्यों के या उच्चतम न्यायालय के विधिजीवी संघ में से नियुक्त कर सकते हैं । उच्चतम न्यायालय के वकील राज्यों के उच्च न्यायालयों में नहीं जाते इसलिये वे वहां के न्यायाधीश नहीं नियुक्त किये जा सकते और इस प्रकार कभी कभी बहुत योग्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हो पाते । हमें न्यायाधीशों के वेतन अधिक रखने चाहियें और हमें अच्छे वकीलों को न्यायाधीश नियुक्त करने के उपायों पर विचार करना चाहिये । मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं ।

श्री फ्रैंक एंथनी (नामनिर्देशित-आंग्ल-भारतीय) : मुझे अपने पूर्व वक्ता की इस बात को सुन कर आश्चर्य हुआ कि १९५० के बाद नियुक्त किये गये न्यायाधीश बहुत योग्य प्रकार के नहीं हैं । अंग्रेजों ने यहां की न्याय-पालिका को बहुत व्यवस्थित रूप से बनाया और इस ने बहुत ही कुशलतापूर्वक कार्य किया है । मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि स में वकीलों में से नियुक्त किये गये उन न्यायाधीशों के लिये, जो अपने सेवा काल के सात वर्ष पूरे नहीं कर सकते, न्यूनतम निवृत्ति वेतन का उपबन्ध किया गया है । किन्तु मुझे डर है कि इस उपबन्ध के बनाने पर भी हमें वकीलों में से सर्वोत्तम प्रकार के व्यक्ति नहीं मिल सकेंगे । मैं यह चाहता हूं कि इन के निवृत्ति वेतन और अधिक कर दिये जायें । इस सम्बन्ध में मैं गृह मंत्री की बात से सहमत नहीं हूं । न्यायपालिका के मामले में हमें भावुकता से काम नहीं लेना चाहिये ।

श्री एस० एस० मोरे : क्या देशभक्ति मानव स्वभाव का एक अंग नहीं है ?

श्री फ्रैंक एंथनी : वित्तीय कारणों की पृष्टभूमि में यह कुछ मंद पड़ जाती है । मैं

[श्री फ्रैंक एंथनी]

उन प्रमुख वकीलों की बात कर रहा हूं जो अत्यधिक रुपया कमा रहे हैं । मैं गृह-कार्य मंत्री से सहमत हूं कि सभी प्रमुख वकीलों की आय राजाओं की सी नहीं होती, किन्तु मुख्य उच्च न्यायालयों में प्रमुख वकील २०,००० रुपये से ले कर ५०,००० पये तक बना लेते हैं ।

इंगलैण्ड में न्यायाधीशों को बड़े अच्छे वेतन प्राप्त हैं । मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यहां के न्यायाधीशों के वेतन बढ़ाये जायें, किन्तु गृह-कार्य मंत्री से यह आग्रह अवश्य करूंगा कि उन की पेन्शन का स्तर ऊंचा किया जाये । यह तो स्पष्ट ही है कि हम अच्छे से अच्छे वकीलों को इस ओर खींचना चाहते हैं । गृह मंत्री को उन की तुलना मंत्रियों के वेतन-स्तर से नहीं करनी चाहिये । कुछ एक व्यक्तियों को छोड़ कर शेष जो लोग मंत्री बनते हैं उन की आय में वृद्धि ही होती है । गृह-कार्य मंत्री स्वयं एक अपवाद हैं, किन्तु इस से तो मेरे तर्क की सिद्धि ही होती है ।

डा० काटजू : मेरे विचार में ऐसा कहना अनुचित होगा ।

श्री फ्रैंक एंथनी : यह एक तथ्य है और माननीय मंत्री ने स्वयं ही तो यह उदाहरण दिया है ।

डा० काटजू : मैं ने 'लोक सेवा' का उल्लेख किया था ।

श्री फ्रैंक एंथनी : मैं समझता हूं कि मंत्री लोक सेवक ही होते हैं । कितने ऐसे मंत्री हैं जिन्हें मंत्री बनने पर हानि हुई होगी ? इस के विपरीत उन की उन्नति ही होती है । एक साधारण राजनीतिज्ञ जो लगभग ५०० रुपया महीना कमा रहा होता है मंत्री बना दिये जाने पर लगभग ३००० पाने लगता है ।

डा० काटजू : कहां ?

श्री फ्रैंक एंथनी : सरकारी बेंचों पर ।

डा० काटजू : यह आप का भ्रम है । क्या आप स्वप्न देख रहे हैं ?

श्री फ्रैंक एंथनी : तो जहां एक मंत्री की आय दस गुनी हो जाती है बेचारे न्यायाधीश की आय घट कर दशमांश रह जाती है । न्यायपालिका किसी देश में लोकतन्त्र की रक्षा का एकमात्र साधन होती है, अतः हमें अपने न्यायाधीशों के साथ विशेष प्रकार का व्यवहार करना चाहिये । किसी न्यायाधीश की न्यूनतम पेन्शन १,००० रुपया प्रति मास होनी चाहिये । उसे केवल ५०० रुपया प्रति मास देना इस पद का अपमान करना है । ऐसी अवस्था में एक डर यह भी हो सकता है कि कहीं निचली श्रेणी के वकील इन पदों पर नियुक्त न हो जायें ।

एक और डर इस बात का भी है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनैतिक धारणाओं का प्रभाव न पड़ने लग जाये । यदि ऐसा होने लगा तो हमारी न्यायपालिका की न्यायपरायणता समाप्त हो जायेगी । आज इस बात की खुली चर्चा है कि अभी कुछ समय हुआ राजस्थान में एक न्यायाधीश की नियुक्ति केवल राजनैतिक आधार पर ही की गई है । मेरा यह सुझाव है कि संविधान के अनुच्छेद २१७ का संशोधन किया जाये जिस से राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा सम्बद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सम्मति से ही कर सके ।

हमें न्यायपालिका को भ्रष्टाचार से बचाये रखना होगा । तभी हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा हो सकती है । अनुच्छेद २१७ को यदि ठीक प्रकार से समझा जाये तो इस से यह जान नहीं पड़ता कि राष्ट्रपति को इस विषय में अपने मंत्रियों की सम्मति का अनुसरण करना

चाहिये । परन्तु मेरे मित्र ने कहा है कि वह भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा सम्बन्धित राज्य के मुख्य न्यायाधिपति के अतिरिक्त राज्यपाल से भी परामर्श प्राप्त करेंगे । यह सन्देहजनक बात है क्योंकि राज्यपाल अपने मंत्रियों के परामर्श पर निर्भर करता है और इस से इस मामले में राजनैतिक दलों तथा वैयक्तिक पक्षपात हो जाता है । यदि ऐसा हुआ तो इस देश में प्रजातन्त्र सुरक्षित नहीं रह सकेगा ।

मैं इस बात को सुनिश्चित करने का प्रयत्न कर रहा हूं कि न्यायपालिका तथा कार्यपालिका पृथक पृथक रहें । न्यायपालिका में राजनैतिक तथा वैयक्तिक हस्तक्षेप की लेशमात्र सम्भावना भी नहीं रहनी चाहिये । मैं नहीं चाहता कि स्वतन्त्र भारत में भी वही बातें हों जो पहले देसी रियासतों में होती थीं । देसी रियासतों में सभी न्यायाधीश वैयक्तिक आधार पर नियुक्त होते थे ।

सभापति महोदय : न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रश्न इस विधेयक के विषय से बहुत दूर का सम्बन्ध रखता है । माननीय सदस्य अब इस विषय में और अधिक कुछ न कहें । इस विधेयक का सम्बन्ध सेवा की कुछ शर्तों से है ।

हम अगले दो घण्टों में इस विधेयक पर खण्डशः विचार करेंगे तथा आधा घंटा तृतीय वाचन के लिये देंगे । अभी बहुत से सदस्य बोलने को हैं अतएव माननीय सदस्य संक्षेप से काम लें ।

श्री फ्रैंक एंथनी : मैं ने यह बात कही थी कि एक हज़ार रुपये का न्यूनतम निवृत्ति-वेतन निश्चित किया जाना चाहिये । हम इस अवस्था पर वेतन-क्रम सम्बन्धी विचार को एक ओर रख सकते हैं ।

सभापति महोदय : माननीय सदस्य गृह-कार्य उपमंत्री का विशेष ध्यान चाहते हैं ।

श्री फ्रैंक एंथनी : यदि आप निवृत्ति-वेतन को वेतन के आधे भाग पर निश्चित कर दें तो यह एक अच्छा प्रलोभन होगा । मैं बता चुका हूं कि किस कारण न्यायाधीशों से एक विशेष प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिये । प्रस्तावित वेतनों से विधिजीवी व्यवसाय में से उत्तम व्यक्ति नहीं मिल सकेंगे । यदि मेरे सुझाव को स्वीकार कर लिया जाय तो न्यायाधीश दूसरी नियुक्तियों पर विचार भी नहीं करेंगे । हम न्यायाधीशों पर विधिजीवी व्यवसाय करने के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगा चुके हैं । मेरा कहना है कि न्यायिक निष्पक्षता का यह एक अपरिवर्तनीय सिद्धान्त है कि "एक बार जो न्यायाधीश बनता है, वह सदैव न्यायाधीश ही रहता है ।" मेरा कहना यह है कि आप के न्यायाधीश अभ्रष्टनीय हैं। परन्तु उन्हें ऐसा दिखाना भी पड़ेगा कि वे अभ्रष्टनीय हैं । आज कल विधिजीवी संघों में सामान्य चर्चा का विषय क्या है ? लोग न्यायाधीशों के निर्णयों के विभिन्न कारण बतलाते हैं । वे चाहते हैं कि हमारे न्यायाधीश ऐसे हों जिन पर सांकेतिक लांछन भी न आ सके । यह ठीक है कि न्यायाधीश भी आखिर मनुष्य ही हैं तथा उन से गलती होना संभव है । परन्तु मैं ऐसी व्यवस्था चाहता हूं जिस से भविष्य की सम्भावनायें न्यायाधीशों के निर्णय तथा दृष्टिकोण को प्रभावित न करें । यह एक बहुत गलत बात है ।

मैं मंत्रियों की वैयक्तिक आलोचना नहीं कर रहा हूं । मेरा कहना इतना ही है कि सेवा निवृत्त होने पर किसी न्यायाधीश को कोई पद न दिया जाय । केवल इसी तरीके से ही आप न्यायाधीशों को अपेक्षित स्तर पर ला सकेंगे हमें ऐसी कोई सम्भावना नहीं रहने

[श्री फ्रैंक एंथनी]

देनी चाहिये जिससे कि हमारे न्यायाधीशों पर कोई उंगली उठा सके ।

श्री **कासलीवाल** (कोटा—झालावाड़) : मेरे पूर्व वक्ता ने राजस्थान के एक विशेष न्यायाधीश की नियुक्ति का निर्देश किया है तथा मैं उन के आरोप का खण्डन करना चाहता हूं। उक्त न्यायाधीश इस से पहले विधिजीवी संघ के एक प्रमुख सदस्य थे जिन्हों ने वकालत से कई हजार रुपये कमाये थे । राजस्थान में एक न्यायाधीश को केवल २,००० रुपये दिये जाते हैं । उन का कांग्रेस दल से कोई सम्बन्ध नहीं था । अतएव यह एक बिल्कुल गलत बात है कि उन की नियुक्ति राजनैतिक विचार से की गई है ।

माननीय मंत्री के भाषण से विधेयक के दो उद्देश्य जान पड़ते हैं । एक तो न्यायाधीशों की छुट्टी तथा यात्रा भत्तों का विनियमन करना तथा दूसरा कुछ न्यायाधीशों को निवृत्ति-वेतन देना । जहां तक इन दो उद्देश्यों का सम्बन्ध है, मैं इस विधेयक का स्वागत करता हूं । परन्तु मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूं जो बहुत कुछ संगत है । इस विधेयक को संविधान के अनुच्छेद २२१ के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है जिस का सम्बन्ध केवल भाग (क) में के राज्यों से है । मैं यह पूछना चाहता हूं कि इस विधेयक के भाग (ख) में के राज्यों के सम्बन्ध में इसी प्रकार के किसी अनुच्छेद के अन्तर्गत क्यों प्रस्तुत नहीं किया गया है । इस अभिप्राय का अनुच्छेद २३८ है । मैं माननीय मंत्री से पूछना चाहता हूं कि इस मामले में ही उन्हों ने यह अन्यायपूर्ण विभेद क्यों किया है ? आप जानते हैं कि भाग (ख) में के राज्यों को पुरानी देशी रियासतों में से बनाया गया है । कई एक राज्यों में विभिन्न नियम हैं । क्या माननीय मंत्री निकट भविष्य में इस अभिप्राय का कोई विधेयक प्रस्तुत करने का विचार कर रहे हैं ?

श्री एस० एस० मोरे : मैं इस दृष्टिकोण का पूर्णतः समर्थन करता हूं कि न्यायपालिका के सदस्यों पर कार्यपालिका के सदस्यों का कोई नियन्त्रण न हो तथा वे बिल्कुल निष्पक्ष हो कर काम करें । मेरा यह भी विचार है कि कार्यपालिका को भी देश में ऐसा वातावरण बनाना चाहिये जिस से हमारी जनता के न्यायपालिका की स्वतन्त्रता में विश्वास को कोई धक्का न लगे । यदि कार्यपालिका गलत चलेगी तो निर्वाचक पांच वर्ष के बाद उन्हें ठीक मार्ग पर ला सकेंगे । इस बीच कार्यपालिका जनता के मूल अधिकारों को संकुचित कर सकती है । ऐसी स्थिति में केवल न्यायपालिका ही सामान्य नागरिक के अधिकारों को सुरक्षित कर सकती है । इसी कारण मेरा यह कहना है कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता को प्रत्येक अवस्था में बनाये रखा जाना चाहिये ।

संविधान के अनुच्छेद २१७ के अन्तर्गत नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है । राष्ट्रपति पर आभार है कि वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से तथा राज्य के राज्यपाल से उच्च न्यायालय के साधारण न्यायाधीशों को नियुक्त करते समय परामर्श करे । संवैधानिक शासन में राष्ट्रपति को मंत्रियों के परामर्श से काम करना पड़ता है । मैं मानता हूं कि परामर्श देते समय कार्यपालिका के सदस्य सन्देह के किसी कारण के बिना ही कार्य करें । परन्तु मानवीय मनोविज्ञान को दृष्टि में रखते हुए हम अपने सम्बन्धियों का ही समर्थन तथा पालन करते हैं । मैं यह बात सारे विश्व के प्रजातन्त्रीय देशों के अनुभव से कह रहा हूं । ब्रिटेन की बात छोड़िये, स्वयं अमेरीका में क्या हुआ है ? जब कभी वहां कोई राजनैतिक दल सत्तारूढ़ होता है तो उस में कुछ

न्यायाधीश भी होते हैं । अतएव अनुच्छेद २१७ को संशोधित किया जाना चाहिये ।

एक और उपबन्ध राज्यपाल से परामर्श करने का है । राष्ट्रपति को परामर्श देने से पहले उसे अपने राज्य के मंत्रियों से परामर्श करना पड़ता है । मेरे अपने राज्य के राज्यपाल वहां के विश्वविद्यालय के कुलपति भी हैं । इस नाते उन्हें विश्वविद्यालय की कोर्ट के कुछ सदस्यों को मनोनीत भी करना पड़ता है । जब प्रधान मंत्री ने उनसे अधिकारों का उनके परामर्श से प्रयोग करने का अनुरोध किया तो कुछ संकट उपस्थित हो गया । मामला महान्यायवादी को भेजा गया तथा उस ने कुलपति के पक्ष में फैसला दिया । अतः मेरा निवेदन यह है कि इन सब उपबन्धों को संविधान में से हटा दिया जाना चाहिये ।

संविधान में एक और संशोधन की भी आवश्यकता है । संविधान के अनुच्छेद २२२ तथा १२४ के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को सेवानिवृत्ति के बाद वकालत करने की अनुमति नहीं दी जाती है । मैं इसकी अन्तर्निहित विचारधारा को नहीं समझ सका हूं । जब एक बार हम न्यायपालिका की ईमानदारी, स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता को स्वीकार कर लेते हैं तो इसके किसी सदस्य पर किसी न्यायालय विशेष को अपने पक्ष में प्रभावित करने का सन्देह नहीं करना चाहिये । इससे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निष्पक्षता पर भी कलंक आता है । आखिर सेवानिवृत्ति के बाद उसके भौतिक कल्याण की कुछ व्यवस्था तो होनी ही चाहिये । यह सरकार से मेरी प्रार्थना है कि इस उपबन्ध को हटा दिया जाय तथा इसके स्थान पर अनुच्छेद १४८ के खण्ड (४) जैसा कोई खण्ड रख दिया जाय । इसके अनसार भारत का नियन्त्रक तथा महालेखा-परीक्षक सेवा निवृत्त के बाद भारत सरकार या किसी राज्य सरकार की सेवा नहीं कर सकता है । न्यायाधीशों के सेवानिवृत होने पर कार्यपालिका द्वारा नाना प्रकार के प्रलोभन दिये जाते हैं । मैं ऐसा कहते हुए डा० काटजू की ओर संकेत नहीं कर रहा हूं । मेरा उनसे यह निवेदन है कि कार्यपालिका के सदस्य होने के नाते वह अपने कर्त्तव्य का पालन करें । मैं कह रहा था कि न्यायाधीशों को सेवानिवृत होने पर नाना प्रकार के प्रलोभन दिये जा सकते हैं जिससे कि न्यायपालिका की निष्पक्षता तथा स्वतन्त्रता को काफ़ी क्षति पहुंच सकती है ।

मैं इस विधान का आंशिक समर्थन करता हूं तथा सरकार से आशा करता हूं कि वह न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की प्रतिभूति दे । ऐसा करते समय सरकार को स्वयं ही संतुष्ट नहीं होना चाहिये बल्कि विरोधी दल को भी संतुष्ट करना चाहिये । केवल तभी हम अपना पूरा सहयोग दे सकेंगे । डा० काटजू सारी योग्यता को सरकारी बेंचों तक ही सीमित न समझें । उन्हें आम जनता में विश्वास पैदा करने का प्रयत्न भी करना चाहिये ।

श्री रघुरामय्या (तेनालि) : मैं उन लोगों में से हूं जो यह समझते हैं कि न्यायपालिका पर व्यय किये गये धन पर किसी को कभी भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये । मैं नहीं समझता कि इस विधेयक में निर्दिष्ट निवृत्ति वेतन की दरों पर इस सदन के किसी सदस्य को आपत्ति होगी ।

श्री फ्रैंक एन्थनी ने एक सुझाव दिया है कि प्रत्येक न्यायाधीश को सेवा निवृत्ति के समय जो वेतन मिल रहा हो उस का आधा वेतन निवृत्ति-वेतन के रूप म मिलना चाहिये । सम्भवतः उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि कभी कभी न्याया-

[श्री रघुरामय्या]

धीशों को किस आयु में भर्ती किया जाता है ; कभी कभी उन्हें अट्ठावन और उनसठ वर्ष की आयु में भी भर्ती किया जाता है और वे साठ वर्ष की आयु में सेवानिवृत हो जाते हैं । तो क्या एक वर्ष या छै मास की सेवा के पश्चात् उनको उन के वेतन का आधा निवृत्ति-वेतन देना उचित होगा ? अतः मेरे विचार में यह सुझाव ठीक नहीं है ।

इस के साथ ही मैं श्री एस० एस० मोरे के इस सुझाव से सहमत नहीं हो सकता कि न्यायाधीशों को व्यवसाय करने की आज्ञा होनी चाहिये । मेरे बिचार में यह बहुत खतरनाक है । न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये सब से बड़ा संरक्षण यही है कि उसे सब प्रकार के लालचों से मुक्त रखा जाये ।

श्री एस० एस० मोरे : सेवा निवृत्त होने के पश्चात् भी ?

श्री रघुरामय्या : सेवानिवृत्त होने के पश्चात् भी । क्योंकि सेवानिवृत्त होने के बाद भी मित्रता तो बनी ही रहती है । मैं न्यायाधीशों की सच्चाई में सन्देह नहीं करता, किन्तु हमें उन्हें अलग ही रखना चाहिये ।

श्रीमान्, मैं न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं । संविधान के अनुच्छेद २२२ में एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित किये गये न्यायाधीशों के लिये प्रतिकरात्मक भत्ते का उपबन्ध है । क्या ही अच्छा होता यदि उस प्रतिकरात्मक भत्ते के सम्बन्ध में इस विधेयक में कुछ उपबन्ध कर दिया गया होता । मैं उन में से हूं जो यह समझते हैं कि किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायपति को उसी उच्च न्यायालय के वकील संघ के सदस्यों में से भर्ती नहीं करना चाहिये, अपितु उसे अन्य उच्च न्यायालयों या उस राज्य के बाहर से भर्ती करना चाहिये । एक और भी प्रथा है कि किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कोई सम्बन्धी उस का साला या बहनोई या जमाता, उस के समक्ष विधि व्यवसाय नहीं कर सकता है । किन्तु उस के सहयोगी के समक्ष प्रस्तुत होना कैसा है ? मुझे पक्का पता नहीं है कि अब इस का पालन होता है या नहीं । यह बहुत बुरी चीज़ है । आप कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति को केवल किसी का सम्बन्धी होने के कारण किसी चीज़ से वंचित करना ठीक नहीं है, यह बात ठीक है । किन्तु इसे दूर करने का एक ही उपाय है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को जितनी जल्दी सम्भव हो स्थानान्तरित करते रहना चाहिये । आप उनको तीन वर्ष तक एक उच्च न्यायालय में रखें और उस के बाद दूसरे उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर दें । किसी व्यक्ति को आजीवन एक उच्च न्यायालय में रखने से वहां उस के स्वार्थ उत्पन्न हो जाते हैं जो कि बहुत अधिक खतरनाक हैं ....

श्री एस० वी० रामस्वामी (सलेम) : ठीक है ।

श्री रघुरामय्य : मैं गृह मंत्री जी से यह अनुरोध करूंगा कि वह इस सुझाव पर विचार करें कि जब कभी कोई नया मुख्य न्यायपति नियुक्त किया जाना हो, तो वह उस न्यायालय के बाहर के क्षेत्र का होना चाहिये जिस में कि उसे नियुक्त किया जाना है ।

श्री एस० वी० रामस्वामी : क्यों ?

श्री रघुरामय्या : क्योंकि स्थानीय व्यक्ति के उस स्थान के अनेकों व्यक्तियों से सम्बन्ध तथा और बहुत सी बातें होती हैं जिस में पक्षपात की सम्भावना हो सकती है । मैं केवल एक सामान्य सुझाव दे रहा हूं

मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि सभी मुख्य न्यायपतियों ने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया है । वास्तव में, अधिकांशतः हमारा मानदण्ड बहुत ऊंचा रहा है । परन्तु स्थानीय व्यक्ति को उच्च न्यायलय का न्यायाधीश नियुक्त करने से शक्तियों के दुरुपयोग की सम्भावना हो सकती है । अतः मेरा अनुरोध है कि इस पहलू पर विचार किया जाये ।

इस विधेयक के अन्य उपबन्धों से मैं पूर्णतया सहमत हूं ।

श्री के० के० बसु : जैसा कि गृह मंत्री जी ने बताया यह विधेयक एक सीधा सादा-सा विधान है । संविधान ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर जो कर्तव्यभार डाला है हमें उसे ध्यान में रखते हुए उन की सेवा की शर्तों पर विचार करना चाहिये । इधर के एक माननीय सदस्य अभी कह चुके हैं कि उन्हें न्यायाधीशों की नियुक्ति का कोई ढंग पसन्द नहीं है । हम उन की इस बात से पूर्णतया सहमत हैं कि यदि ऐसी बातें होती हैं कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश पर भी कार्यपालिका की सलाह के कारण वकील संघ के किसी व्यक्ति को नियुक्त नहीं किया गया है तो इस विषय पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है । मैं समझता हूं कि संविधान के वर्तमान उपबन्धों के अन्तर्गत राष्ट्रपति को इस प्रकार की सलाह लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, अथवा मैं तो यह कहूंगा कि वह गृह मंत्री इत्यादि के साथ उस विषय में चर्चा कर सकते हैं, किन्तु उन्हें उन से सलाह नहीं लेनी चाहिये । मुझे आशा है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया होगा जैसा कि इस मामले के सम्बन्ध में बताया गया है ।

वकील संघ के सदस्यों ने न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में एक बात यह कही थी कि जो न्यायाधीश वकील संघ से लिये जाते हैं उन की आय पहले बहुत होती है अतः न्यायाधीश नियुक्त किये जाने पर उन का वेतन अधिक होना चाहिये । मैं उन की इस बात से सहमत नहीं हूं, क्योंकि उन का वेतन अन्य देशों के न्यायाधीशों के वेतन की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं है और फिर इस में लोक सेवा की भावना भी तो है । मैं अपने कलकत्ता उच्च न्यायालय के अनुभव से बता सकता हूं कि वहां के लोग एक न्यायाधीश के रूप में देश की सेवा करने के लिये अपने आर्थिक लाभ को तिलांजली दे सकते हैं ।

इस प्रकार तो न्यायाधीशों का वेतन ८००० रुपये या ९००० रुपये मासिक पड़ेगा, क्योंकि हमारे यहां चोटी के वकील २०,००० पये से ३०,००० रुपये तक मासिक कमाते हैं । किन्तु इस प्रकार अंक गणित के हिसाब से काम नहीं चल सकता है । मैं समझता हूं कि ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो राज्य की सेवा करने के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करने को तैयार हैं । अतः देश की वर्तमान आर्थिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए यह युक्ति ठीक नहीं प्रतीत होती है ।

न्यायाधीशों ने सामान्यतः हमारे देश की परम्परा को बनाये रखा है । परन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वे कार्यपालिका के प्रभाव में न आ सकें । कुछ समय पूर्व बंगला समाचारपत्रों में एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि किसी राज्य के मुख्य मंत्री ने मुख्य न्यायाधिपति को एक पत्र लिखा था जिस में किसी न्यायाधीश के कार्य की आलोचना की गई थी । अतः हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि न्यायाधीश दलगत राजनीति से अलग रहें । संविधान के अन्तर्गत जनसाधारण को जो अधिकार मिले हुए हैं उनकी रक्षा का एकमात्र साधन

[श्री के० के० बसु]

उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय हैं । अतः इन की रक्षा की जानी चाहिये । हम देखते हैं कि कई बार न्यायाधीशों को, जब वे न्यायाधीश का कार्य करते होते हैं, ऐसे पदों पर नियुक्त किया जाता है जहां वे कार्यपालिका के अधिकारियों के निकट सम्पर्क में आते हैं । अतः हमें ऐसी नियुक्तियां नहीं करनी चाहियें जिस से लोगों को यह आशंका हो सके कि न्यायाधीश कार्यपालिका से प्रभावित हैं ।

हम ने यह सुना है कि पहले उच्च न्यायालय को न्यायाधीश राज्य के अधिपति या वायसराय तथा राज्यपालों द्वारा दी गई पार्टियों में भी सम्मिलित नहीं होते थे कि कहीं यह न समझा जाने लगे कि वे कार्य-पालिका से प्रभावित हैं । किन्तु आज कल तो वे छोटी मोटी पार्टियों में भी सम्मिलित होने लगे हैं जिस के कारण लोग यह समझते हैं कि वे मंत्रियों तथा अन्य व्यक्तियों के प्रभाव में आये हुए हैं ।

मैं सेवानिवृत्ति के पश्चात् विधि व्यवसाय करने को बहुत खतरनाक समझता हूं । हमारे संविधान में जान-बूझ कर सेवा निवृत्ति के पश्चात् निजी व्यवसाय का निषेध किया गया है और यह ठीक ही है इस से उन की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचता है । मैं सेवानिवृत्ति के पश्चात् नियुक्ति के भी अत्यन्त विरुद्ध हूं । न्यायाधीशों को सेवा निवृत्ति के पश्चात् समितियों इत्यादि में नियुक्त नहीं किया जाना चाहिये । इस से लोग यह समझने लगते हैं कि वे भविष्य में फल की आशा से सरकार का पक्ष लेने लगे हैं । न्यायाधीशों को किसी बात के सम्बन्ध में चर्चा करने के लिये राज्यपालों तथा मंत्रियों के पास जाना भी शोभा नहीं देता है । अतः मैं सेवा निवृत्ति के पश्चात् इस प्रकार की नियुक्तियों का तीव्र विरोध करता हूं । मेरा यह अनुरोध है कि न्यायाधीशों की सेवा की शर्तें निश्चित करते समय इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिये ।

कुछ माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि न्यायाधीश नियुक्त किये जाने के लिये अच्छे और योग्य व्यक्ति नहीं मिलते हैं । मैं यह कह सकता हूं कि यद्यपि हमारे रास बिहारी घोष, मोतीलाल नेहरू तथा भूलाभाई देसाई जैसे विधान पंडित नहीं रहे हैं, किन्तु अब भी ऐसे न्यायाधीश हैं जो बहस के समाप्त होते ही अपना निर्णय दे देते हैं और ऐसे भी हैं जो बहस समाप्त होने के बारह या पन्द्रह मास पश्चात् भी अपना निर्णय नहीं दे सकते हैं । यह तो सरकार के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये उचित व्यक्तियों के चुनाव पर निर्भर करता है । अतः यह तर्क ठीक नहीं है ।

सेवा की न्यूनतम अवधि के प्रश्न के सम्बन्ध में, गृह मंत्री जी ने कहा है कि प्रत्येक न्यायाधीश को अपना निवृत्ति वेतन प्राप्त करने के लिये कम से कम कुछ वर्ष तक अवश्य कार्य करना चाहिये ।

इतनी बातें कहने के पश्चात् भी डा० काटजू को न्यायपालिका की स्वतंत्रता के प्रति कुछ आदर है । किन्तु ऐसे मामले भी हो सकते हैं कि जहां अपने व्यवसाय के अन्तिम काल में पहुंचे हुए लोगों को एक या दो वर्ष के लिये न्यायाधीश बनाया जाये । यदि कोई व्यक्ति न्यूनतम समय तक सेवा करने में असमर्थ हो, तो उसे नियुक्त नहीं किया जाना चाहिये । मैं ने इसी आशय का संशोधन भी रखा है । कलकत्ता उच्च न्यायालय के कुछ उदाहरण मुझे मालूम हैं, जहां न्यायाधीश पेंशन भी प्राप्त नहीं कर सके हैं । मैं आशा करता हूं कि मंत्री महोदय मेरे संशोधन को स्वीकार करेंगे ।

श्री ए० एम० टामस (ऐरणाकुलम्) : श्री एंथनी ने न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनैतिक हेतु का आरोप लगाया है । राजस्थान सम्बन्धी उदाहरण का उत्तर श्री कासलीवाल ने दे दिया है । मुझे पता है कि राज्यपाल और मुख्य न्यायाधीश की सिपारिशों में विरोध होने पर मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश को माना गया था । इस प्रकार के अच्छे प्रचलन से मैं संतुष्ट हूं । अतः श्री एंथनी का आरोप सारहीन है ।

यह सुझाव रखा गया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान वेतन और समान दर्जा होना चाहिये । भारत सरकार इस प्रस्ताव पर पहले ही से विचार कर रही है और जब भाग (क) और भाग (ख) में के राज्यों में वित्तीय असमानता नहीं रहेगी, तब न्यायाधीशों के वेतन, दर्जा, और कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व में एकता प्राप्त करना संभव हो सकेगा ।

भाग (क) और भाग (ख) में के राज्यों के बीच असमानता को माना जा सकता है, किन्तु भाग (ख) में के राज्यों में भी उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतनों में बहुत अधिक अन्तर है । उनके वेतन १५०० और ३००० रुपये के बीच भिन्न भिन्न हैं । इस असमानता को दूर किया जाना चाहिये, इस लिये मैं ने इस वाद विवाद में भाग लिया है ।

संविधान की धारा २२२ के अनुसार उच्च न्यायालयों के सब न्यायाधीश समान हैं । जब तक उन के वेतन-स्तर विभिन्न रहेंगे, उन के परस्पर स्थानान्तरण नहीं हो सकेंगे, और संविधान की धारा निरर्थक प्रतीत होगी । इसलिये भाग (ख) में के राज्यों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतनों में समानता होनी चाहिये ।

डा० काटजू : सभापति महोदय, आपने इस विधेयक पर वाद विवाद के बीच न्यायाधीशों की नियुक्ति से सम्बन्धित कई ऐसे प्रश्नों पर चर्चा किये जाने की अनुमति दी थी, जो संगत प्रश्न नहीं थे, और इस विषय पर बहुत बातें कही जा चुकी हैं, और जब तक आप मुझे दो तीन मिनट उनके सम्बन्ध में कुछ कहने की अनुमति नहीं देंगे, तो उस से बहुत भ्रान्ति उत्पन्न होने की संभावना है ।

बिना किसी औचित्य के, यह बात बड़े ज़ोर से कही गई है कि भाग (क) या भाग (ख) में के राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने में राजनैतिक बातों को स्थान दिया जाता है । मैं पूरे ज़ोर से कहता हूं कि यह बात ग़लत है और ऐसा कहीं नहीं होता है । ज़रा देखिये कि संविधान में क्या उपबन्ध किया गया है ।

यदि उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को नियुक्त करना होता है, तो मामला उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से प्रारम्भ होता है । वह सोचता है कि "मेरा साथी न्यायाधीश सेवा निवृत्त हो रहा है, और मैं ने सब संभव दावेदारों के दावों का विचार कर लिया है और यह मेरा प्रस्ताव है ।" वह मुख्य मंत्री को संबोधन करता है । गृह-मंत्रालय ने लगभग चार वर्ष हुए इस की प्रस्तावित प्रक्रिया परिचालित की थी । मुख्य न्यायाधिपति की सिपारिश पर संविधान के अनुसार संवैधानिक प्रधान, राज्यपाल तथा मुख्य मंत्री को अपना मत अभिव्यक्त करना होता है । गृह-मंत्रालय के परिपत्र में कहा गया है कि इस मामले में आप हमें केवल मुख्य मंत्री का मत ही नहीं भेजते हैं, अपितु राज्यपाल का व्यक्तिगत मत भी भेजते हैं । एक तो अपवादों को छोड़ कर, राज्यपाल, राज्य से बाहर चले जाते हैं । जब मामला केन्द्रीय सरकार के पास गृह-मंत्रालय म आता है, तो उस के सामने

[डा० काटजू]

तीन पत्र होते हैं—मुख्य न्यायाधिपति का पता, राज्यपाल का व्यक्तिगत मत और राज्य के प्रतिनिधि मुख्य मंत्री का मत । उन पत्रों पर हम भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करते हैं । समस्त फाइल उसके पास भेज दी जाती है । उसे अपना व्यक्तिगत ज्ञान होता है, वह अपनी टीका टिप्पणी देता है और तब मामला व्यवस्थित रूप में राष्ट्रपति के सामने प्रस्तुत किया जाता है ।

किसी सदस्य ने सुझाव दिया है कि यह मामला महत्वपूर्ण होता है इसलिये राष्ट्रपति को केवल भारत के मुख्य न्यायाधिपति के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिये, और केन्द्रीय सरकार को इस से पृथक रहना चाहिये । मैं नहीं समझता कि यह बात इसके वास्तविक अभिप्राय को सोच समझ कर कही गई है या नहीं । मान लीजिये, भारत का मुख्य न्यायाधिपति इस मामले में राष्ट्रपति का सलाहकार बन जाता है । तो क्या सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न संसद् अपना कर्तव्य छोड़ने को तैयार है ? क्योंकि, संविधान के अधीन, राष्ट्रपति, राज्य के संवैधानिक प्रधान हैं, और उन्हें परामर्श के अनुसार कार्य करना होता है । माननीय मित्र ने भारत के मुख्य न्यायाधिपति का सुझाव रखा है, क्योंकि सब मंत्रीगण सन्देह के पात्र होते हैं, क्योंकि उनके राजनैतिक सम्पर्क होते हैं, सम्बन्धी होते हैं, भाई, साले, बहनोई और न मालूम क्या क्या होते हैं, इसलिये उन पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिये । उन पर संसार की प्रत्येक बात के लिये युद्ध, और शान्ति के लिये, प्रत्येक नियुक्ति, और महान नियुक्तियों के लिये, विश्वास किया जा सकता है, किंतु न्यायपालिका अवश्य स्वतंत्र होनी चाहिये, इसलिये यह काम भारत के मुख्य न्यायाधिपति के सुपुर्द होना चाहिये । यदि मुख्य न्यायाधिपति कुछ परामर्श देता है, तो संसद उस पर वाद विवाद नहीं कर सकती है क्योंकि संसद् में मुख्य न्यायाधिपति उपस्थित नहीं होता । संविधान के अनुसार, किसी न्यायाधीश को नियुक्त किया जा सकता है किन्तु हटाया नहीं जा सकता है । प्रत्येक संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुरक्षित रखी जाती है, न्यायाधीश की नियुक्ति की पद्धति के द्वारा ही नहीं, अपितु इस बात के द्वारा भी कि न्यायाधीश को अपने पद के संरक्षण का पूरा भरोसा रहता है । वह समस्त सन्देहों से ऊपर रहता है । उसे इस बात का कोई ध्यान नहीं होता कि यदि वह मामले का निर्णय इस रूप में या दूसरे रूप में देता है, तो इस से कोई व्यक्ति प्रसन्न होगा अथवा अप्रसन्न होगा । भारत का मुख्य न्यायाधिपति हटाया नहीं जा सकता है और कोई भी न्यायाधीश हटाया नहीं जा सकता है । यदि आप किसी नियुक्ति विशेष से संतुष्ट नहीं हैं, तो आप सम्पूर्ण केन्द्रीय सरकार में अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं, अथवा गृह मंत्री को भी हटा सकते हैं । यह दूसरा मामला है । माननीय सदस्य इन बातों को नहीं सोच सके हैं । वे एक अज्ञात संविधान को स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, अर्थात्, इस मामला विशेष में, साधारण परामर्श पद्धति को न अपनाया जाये, और किसी अन्य व्यक्ति को बीच में डाला जाये, और उस अन्य व्यक्ति पर संसद् का कुछ अधिकार न हो । वाद विवाद की बात तो दूर रही यह तो वर्णन करने योग्य प्रस्ताव भी नहीं है । इस में कोई सार नहीं है । कई न्यायाधीशों ने भी यही बात कही है । इंगलिस्तान में न्यायाधीश, सम्राट या सम्राज्ञी द्वारा, मंत्रि-मण्डल के परामर्श से नियुक्त किये जाते हैं, और यह परामर्श प्रधान मंत्री द्वारा दिया

जाता है, और प्रधान मंत्री लार्ड चांसलर से परामर्श लेता है । लार्ड चांसलर स्वयं मंत्रिमण्डल का सदस्य होता है, और मंत्रिमण्डल से बाहर भी चला जाता है । यह एक राजनैतिक नियुक्ति होती है, केवल न्यायाधीश स्थायी होता है । इंगलिस्तान में न्यायाधीश होते हैं और मुख्य न्यायाधिपति होता है । इसलिये मुझे ऐसे किसी उदाहरण का पता नहीं है, जहां, नियुक्ति करने में, राज्यों के संवैधानिक प्रधान मंत्रालय के अतिरिक्त अन्य लोगों से परामर्श लेते हैं । आपके सन्देह और मंत्रालय के प्रति आक्षेप करने की कुछ सीमा होनी चाहिये । किसी भी समय आप इस ओर आ सकते हैं, जैसा कि आप किसी दिन इस ओर आने की आशा रखते हैं ।

कुछ माननीय सदस्य : कदापि नहीं ।

डा० काटजू : तब आप का क्या होगा ? जिस प्रकार आप लोग हमारे ऊपर कीचड़ उछालते हैं, आप के साथ भी ऐसा ही व्यवहार होगा । मुझे श्री बसु के भाषण का खेद है । उन्होंने कलकत्ता उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में कहा कि वहां के न्यायाधीश दलों के पास जाते हैं, तथा गवर्नमेंट हाउस आदि में जाते हैं इत्यादि । उन्होंने यह दलील कई बार दी । कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति भवन में जाने की इच्छा रख सकता है । पुराने ढंग की बातें करने का क्या लाभ है ? इस से पहले, वायसराय, कार्यपालिका शक्ति का अध्यक्ष हुआ करता था, प्रान्तों में राज्यपाल कार्यपालिका शक्ति के अध्यक्ष हुआ करते थे । अब इन दोनों स्थानों पर, राज्य के प्रधान हमारे अपने व्यक्ति हैं, और यदि राज्य का प्रधान, उत्सवों, राष्ट्रीय उत्सवों अर्थात् स्वतंत्रता दिवस, गणराज्य दिवस, या और किसी उत्सव पर न्यायाधीशों को निमंत्रण देता है, तो क्या आप के कहने का यह अभिप्राय है, कि न्यायाधीशों को निमंत्रण स्वीकार न करके वहां नहीं जाना चाहिये । यह सब से बड़ी अशिष्टता होगी ।

श्री के० के० बसु : क्या न्यायाधीशों को और अवसरों पर निमंत्रित नहीं किया जाता है ?

डा० काटजू : मुझे इन बातों में खैंचने का प्रयत्न न कीजिये । मेरे पास नियमों की तालिका है । न्यायाधीश मेरे पास आते हैं, मुझ से वार्तालाप करते हैं, और हम बंगला कला, नृत्य, गायन, साहित्य, रविन्द्र नाथ ठाकुर तथा अन्य अनेक विषयों पर चर्चा करते हैं । इसलिये पुरानी बातों को बीच में न लाइये, जब कि वायसराय और राज्यपाल बिल्कुल ही भिन्न व्यक्ति होते थे । मैं इस प्रकार के संदेहपूर्ण विचार करने पर आपत्ति करता हूं । मेरे एक मित्र ने कहा है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी संदेह के पात्र हैं । निस्सन्देह, वह हिन्दू या मुसलमान हो सकता है । उस के अपने पुत्र होते हैं । इसलिये क्या किया जाये ? क्या उसे स्थानान्तरित कर दिया जाये और एक ही उच्च न्यायालय में तीन वर्ष से अधिक न रहने दिया जाये ? इलाहाबाद में श्री बनर्जी एक न्यायाधीश थे, जो वहां लगातार ३० वर्ष से थे, वह उन महानतम न्यायाधीशों में से थे, जिनके सम्पर्क में मैं आया हूं । और भी बहुत न्यायाधीश दस, बारह या पन्द्रह वर्ष तक रहे हैं । माननीय सदस्य के कथनानुसार उन्हें अवश्य ही तीन वर्ष के पश्चात् बदल दिया जाना चाहिये । प्रादेशिक भाषाओं के लिये इतना आग्रह किया जाता है । मैं नहीं समझता कि किसी किसी राज्य विशेष की जनता कितनी देर तक अंगरेजी को न्यायालय की भाषा जारी रखने की बात बर्दाश्त कर सकेगी । इसलिये यदि कोई व्यक्ति आन्ध्र से सम्बन्ध रखता है, तो उसे आन्ध्र देश में सेवा नहीं करनी

[डा० काटजू]

चाहिये। मैं नहीं समझ सकता कि जब वह तामिलनद में जायेगा, तो उसका कैसा स्वागत होगा। मान लीजिये कि उसे वहां की अपेक्षा बंगाल भेजा जाता है, और बंगाली मुकदमे और मिसलें उसके सामने आती हैं। क्या वह तेलगू या किसी दूसरी भाषा में उनका अनुवाद करायेगा? इस समय उसे हिन्दी नहीं आती है। इस के बाद तीन वर्ष के पश्चात् उसे पंजाब में भेज दीजिये।

उसको पंजाबी सीखनी पड़ेगी। तीन वर्ष बाद उसे गुजरात या महाराष्ट्र भेजना पड़ेगा। उसे मराठी भाषा सीखनी पड़ेगी। यह हास्यास्पद है। इस चीज़ को सुन कर मुझे सचमुच दुःख हुआ।

श्री रघुरामय्या : यह आवश्यक नहीं है कि उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश इस देश की प्रत्येक भाषा जाने। यही बात उच्च न्यायालयों के संबंध में भी लागू होनी चाहिये।

डा० काटजू : मैं इस विचार और इसके पीछे छिपे हुए दोषारोप से बिलकुल असहमत हूं। ईश्वर की अनुकम्पा से हमारी न्यायपालिका की सारे देश में बहुत उज्जवल कीर्ति है। वे अपने ही उच्च न्यायलयों में काम करते रहते हैं और कोई स्थानान्तरण नहीं हुए हैं। यहां पर जो प्रश्न है, उसका अर्थ है स्थानान्तरण। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी न्यायाधीश को अपने ही प्रांत में सेवा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। अपने ही न्यायाधीशों पर इस प्रकार का दोषारोप लगाना ठीक नहीं है। इस संबंध में मुझे इतना ही कहना है।

श्री फ्रेंक एन्थनी की बातों का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि आमतौर पर वह अपना भाषण देने के बाद चले जाते हैं। इसके बाद मेरे माननीय मित्र का भाग 'ख' राज्य संबंधी सुझाव आता है। शायद सदस्यों को मालूम होगा कि १९ दिसम्बर, को हमने भाग 'ख' में के राज्यों के सभी क्षेत्रों से संबंधित राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये नियमों को गजट में प्रकाशित कर दिया है। यदि माननीय सदस्यों की यह इच्छा है कि इस मामले पर संसद् में चर्चा होनी चाहिये, तो मैं सदन में एक विधेयक प्रस्तुत करने की व्यवस्था करूंगा। वस्तुतः यह मामला अत्यावश्यक नहीं है।

अन्त में, कुछ माननीय सदस्यों ने कहा कि न्यूनतम निवृत्ति वेतन १००० रुपये होना चाहिये। यहां ऐसा चलन नहीं रहा है। साथ ही आप सामाजिक न्याय की बात कहते हैं और चाहते हैं कि सभी वेतन कम कर दिये जायें। राज्यों में—केन्द्रीय सरकार में नहीं—मंत्रियों को १००० रुपये या १२०० रुपये या ७५० रुपये मिलते हैं; त्रावनकोर-कोचीन में कदाचित् इससे भी कम मिलता है।

इन उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्थिति विशिष्ट है। मैं उन सब प्रथाओं की चर्चा नहीं करना चाहता हूं। जिन न्यायाधीशों ने पद स्वीकार किया, वे काफी धन कमा रहे थे। दिवंगत लार्ड सिन्हा तथा अन्य अनेक लोगों के विषय में मुझे वास्तव में कुछ नहीं मालूम है। मैं इलाहाबाद के बहुत से लोगों को जानता हूं। हमेशा यही हुआ है कि भारी आय को छोड़ कर उन्होंने ४,००० रुपये वेतन स्वीकार किया है। ५०० रुपये से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। जहां तक निवृत्ति वेतन का संबंध है, हमने इस पर विचार किया है। निवृत्ति-वेतन सदैव ११०० रुपये रहा है। अन्तर केवल इतना ही है कि यदि सेवा सात वर्ष से कम की है, तो निवृत्ति-

वेतन नहीं मिल सकता है । मैं सदन को यह आश्वासन देना चाहता हूं कि हम इस बात का ध्यान रखेंगे, और हम इस चलन को आरंभ कर चुके हैं, कि कोई भी व्यक्ति तब तक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त नहीं हो सकेगा जब तक कि उसने कम से कम पांच वर्ष तक सेवा न की हो । अपवाद स्वरूप छै महीने इधर उधर हो सकते हैं । मैं ऐसे मामलों की बात नहीं कर रहा हूं । यह बात अब नहीं रह गई है कि कोई मंत्री किसी व्यक्ति को कुछ समय के लिये एक न्यायाधीश बना दे और फिर शेष जीवन के लिये, ६० वर्ष की आयु तक, उसे ५०० रुपये निवृत्ति वेतन देता रहे और करदाता इसके लिये धन देते रहें । जहां तक निवृत्ति-वेतन की राशि का संबंध है, जब से उच्च न्यायालय स्थापित हुए हैं तभी से यह स्थायी नियम चला आया है कि अंग्रेज न्यायाधीश को १२०० पौंड और भारतीय न्यायाधीश को लगभग इतना ही मिलता रहा है । और हम उसी को जारी रखे हुए हैं । अतः अब मैं और अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं, परन्तु मुझे खेद है कि इस विधेयक के प्रसंग में न्यायपालिका पर, उसकी नियुक्ति के तरीकों के संबंध में कुछ आरोप लगाये गये और यह कहा गया कि उसका स्तर गिरता जा रहा है । यह सच बात नहीं है ।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है :

"कि भाग 'क' राज्यों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सेवा की कतिपय शर्तों का विनियमन करने वाले विधेयक पर विचार किया जाये ।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

खण्ड २.—(परिभाषायें)

श्री के० के० बसु : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

पृष्ठ १, पंक्ति १६ में "President of India" ["भारत के राष्ट्रपति"] के बाद "and nominated by the Chief Justice of the High Court or by the Chief Justice of India or Parliament by resolution" ["तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति या भारत के मुख्य न्यायाधिपति अथवा संकल्प द्वारा संसद् द्वारा नामनिर्देशित"] प्रविष्ट किया जाये ।

मैं केवल यह चाहता हूं कि एक न्यायाधीश के लिये जो कार्य निर्धारित हैं, उनके अतिरिक्त कार्यों को करने के लिये न्यायाधीशों की नियुक्ति बहुत सीमित होनी चाहिये । यदि कोई ऐसी आवश्यकता पड़े तो उसको संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के नामनिर्देशन के आधार पर नियुक्त किया जाये या फिर एक संकल्प के द्वारा संसद् ऐसा करे । इसका परिणाम यह होगा कि जनता को उस न्यायाधीश के न्याय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होगा । यही मेरे संशोधन का तात्पर्य है,

सभापति महोदय : संशोधन प्रस्तुत हुआ । क्या मैं जान सकता हूं कि माननीय मंत्री की प्रतिक्रिया क्या है ?

डा० काटजू : मैं इस संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं क्योंकि इसके द्वारा एक बहुत नया और बहुत खतरनाक सिद्धान्त रखा जा रहा है । अब मेरे माननीय मित्र कहते हैं कि भारत के राष्ट्रपति को स्वयं अपने अधिकार के आधार पर कार्य करने का अधिकार नहीं होना चाहिये । उन्हें उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति या भारत के न्यायाधिपति या संसद् के एक संकल्प द्वारा नामनिर्देशन कराना चाहिये । मैं समझता हूं कि आज मंत्रियों के संबंध में

[डा० काटजू]

जो कुछ कहा गया है वही भविष्य में किसी भी न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति या भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा की गई नियुक्तियों के संबंध में भी कहा जायगा और तरह तरह के आरोप लगाये जायेंगे। मैं यह नहीं चाहता कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति या किसी भी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति सार्वजनिक चर्चा के विषय बनें। संसद् द्वारा नामनिर्देशन के सुझाव में भी कोई सार नहीं है।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन मतदान के लिये प्रस्तुत किया गया और अस्वीकृत हुआ।

श्री के० के० बसु : मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"पृष्ठ २ में पंक्ति २२ निकाल दी जाये"।

इस संशोधन के द्वारा मैं "भारत के बाहर जाने की छुट्टी से लौटने पर पुनः कार्य आरंभ करने से पूर्व का अवकाश" शब्द निकलवा देना चाहता हूं। यह व्यवस्था अंग्रेज न्यायाधीशों के लिये की गई थी, पर अब ऐसे न्यायाधीशों की संख्या बहुत कम रह गई है। भारतीय न्यायाधीशों के लिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

सभापति महोदय : संशोधन प्रस्तुत हुआ।

डा० काटजू : मेरे माननीय मित्र ने जो कुछ कहा उससे मुझे सहानुभूति है और मैं यह नहीं चाहूंगा कि कोई भी भारतीय न्यायाधीश भारत से बाहर जाने के लिये छुट्टी ले क्योंकि आजकल इसका कोई अर्थ नहीं रह गया है। परन्तु अभी कुछ ऐसे न्यायाधीश हैं, जो सेवा की इस शर्त का लाभ उठाते रहे हैं। नियमों के अधीन, उन्हें भारत से बाहर जाने के लिये छुट्टी प्राप्त करने का अधिकार था और यहां पर उसकी व्यवस्था करनी है और उसकी प्रतिभूति देनी है। अतः इस विधेयक को बनाते समय हमें इस का ध्यान रखना पड़ा था। परन्तु मैं इस बात से सहमत हूं कि इस पीढ़ी के समाप्त होने पर किसी न्यायाधीश द्वारा ऐसी छुट्टी लेने का कोई अवसर नहीं आयेगा।

श्री के० के० बसु : यदि यह बात है, तो मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहूंगा।

सभापति महोदय : क्या सदन माननीय सदस्य को अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति देता है?

कई माननीय सदस्य : जी हां।

संशोधन सदन की अनुमति से वापस लिया गया।

डा० काटजू : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

(१) पृष्ठ २, पंक्ति १२ में " means " ["का अर्थ है"] के बाद शब्द "the High Court at Rangoon" ["रंगून उच्च न्यायालय"] रखे जायें।

(२) पृष्ठ २, पंक्ति २५ में "Part A State" ["भाग 'क' राज्य"] के बाद "and includes a High Court which was exercising jurisdiction in the corresponding Province before the commencement of the Constitution" ["और जिसमें एक ऐसा उच्च न्यायायालय भी सम्मिलत है, जिसका संविधान के लागू होने से पूर्व तत्स्थानी प्रांत में क्षेत्राधिकार था"] शब्द रखे जायें।

(३) पृष्ठ २, पंक्ति ३५ में शब्द "in a Part A State" ["एक भाग 'क' राज्य में"] निकाल दिये जायें।

हमारे एक न्यायाधीश ऐसे हैं, जो ब्रह्मा से इलाहाबाद को स्थानांतरित किये गये थे । यह उस अवसर पर किया गया था जब कि ब्रह्मा ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग था, और यह स्थानान्तरण सहमति से किया गया था । अतः उक्त न्यायाधीश के लिये व्यवस्था करनी है । यही मेरे प्रथम संशोधन का उद्देश्य है । अन्य संशोधनों पर भी यही बात लागू होती है ।

सभापति महोदय द्वारा उक्त संशोधन प्रस्तुत किए गए और स्वीकृत हुए ।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है :

"कि खण्ड २, संशोधत रूप में, विधेयक का अंग बने"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

खण्ड २ संशोधित रूप में, विधेयक में जोड़ दिया गया

खण्ड ३ विधेयक में जोड़ दिया गया ।

श्री के० के० बसु : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

(१) पृष्ठ ३, पंक्ति ८ में "one fourth" ["एक चौथाई"] के स्थान पर "one eighth" ["आठवां भाग"] रखा जाये ।

(२) पृष्ठ ३, पंक्ति १३ में "double" ["दुगना"] निकाल दिया जाये ।

मेरे पहले संशोधन का संबंध उस काल से है जो उसके द्वारा वास्तविक सेवा में बिताया गया है । दूसरा संशोधन न ली गई छुट्टी के लिये मुआवज़े के संबंध में है । न्यायाधीशों को अन्य लोगों की अपेक्षा काफ़ी छुट्टियां मिलती हैं । उक्त व्यवस्था अंग्रेज न्यायाधीशों के लिये की गई थी, जिन्हें लम्बी छुट्टी की आवश्यकता पड़ती थी । अब ऐसी कोई बात नहीं है । अतः मैं समझता हूं कि यह विशेष सुविधा, जो अन्य

सरकारी कर्मचारियों को नहीं दी जाती है, न्यायाधीशों को नहीं दी जानी चाहिये । कुछ न्यायालयों में स्वेच्छापूर्वक न्यायाधीशों ने अपनी छुट्टियों को कम कर दिया है । यदि किसी समिति में काम करने के लिए उनसे कहा जाता है और इस कारण वह अपनी छुट्टियों का उपयोग नहीं कर पाते हैं तो इसका मुआवज़ा उन्हें मिल सकता है । इसलिये मैं आशा करता हूं कि वर्तमान स्थिति एवं अवकाश अवधि में की गई कमी को दृष्टि में रखते हुए हमारे सार्वजनिक सेवक जन कल्याण और देश हित की भावना से कार्य करेंगे । न्यायाधीश सम्मानित एवं उच्च वर्ग के जन सेवक हैं और उन्हें इसी भावना से कार्य करना चाहिये । कुछ न्यायाधीशों ने अपने अवकाश में कमी कर दी है । अतः माननीय मंत्री से निवेदन करता हूं कि वह मेरा संशोधन स्वीकार कर लें ।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन प्रस्तुत किये गये ।

डा० काटजू : कुछ कारणों के आधार पर मैं इन संशोधनों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं । पहली बात तो यह है कि ऐसा करने से हम बहुत दिनों से अपनाई जा रही प्रथा से काफ़ी अलग हो जायेंगे । दूसरी बात यह है कि देखने में तो यह नियम कि 'न्यायाधीश ने वास्तव में जितना काल सेवा में बिताया है, उसके एक चौथाई समय का अवकाश उसे दिया जाय' बड़ा विशाल लगता है किन्तु व्यवहार रूप में बहुत से उपबन्ध ऐसे हैं जो इस नियम की सौहार्द्रता को कम कर देते हैं । उदाहरण के लिए 'निवृत्ति-वेतन निश्चित करने के लिए कार्यकाल' को लीजिये । अभी हाल ही में पारित खंड २, उपखंड (ज) को लीजिये; उसमें लिखा है कि "निवृत्ति-वेतन निश्चित करने के लिए उसके वास्तविक कार्यकाल

[डा० काटजू]

को गिना जायगा" अर्थात केवल उतना ही समय गिना जायगा जब कि उन्होंने कार्य किया था । दूसरे "पूरे भत्ते के प्रत्येक अवकाश काल का एक मास अथवा जितनी छुट्टियां उसने ली हों, जो भी कम हो ।" इसका तात्पर्य यह है कि न्यायाधीश अधिक से अधिक तीन वर्ष तक का अवकाश ले सकता है, किन्तु यदि वह इस अवकाश का उपयोग कर लेता है तो यह अवकाश निवृत्ति-वेतन के लिए नहीं गिना जायगा । इसका परिणाम यह हुआ है कि बहुत कम न्यायाधीशों ने इस अधिकतम अवकाश का उपयोग किया है । मजबूरी में ही इसका उपयोग करते हैं— या तो बीमार पड़ जाने पर या किसी घरेलू कारण विशेष से बाधित होने पर ही इसका उपयोग करते हैं । उसके बाद आप भत्ता देते हैं । अवकाश के प्रथम मास में ४००० रुपये, दूसरे तथा तीसरे मास में २२०० रुपये मिलता है । इन तीन साल के अवकाश में भत्ता केवल आधा मिलेगा । अतः इन सभी बातों को ध्यान में रखकर मैं माननीय सदस्य से प्रार्थना करता हूं कि वह अपने संशोधन पर अधिक आग्रह न करें और वर्तमान प्रक्रिया को ज्यों का त्यों चलता रहने दें । न्यायाधीशों के लिए यह प्रक्रिया बड़ी सन्तोष-जनक है और वे इसे चाहते भी हैं । एक शताब्दी से यह प्रक्रिया लगातार चली आ रही है ।

श्री के० के० बसु: अपना संशोधन वापिस लेने के लिए मैं सदन की अनुमति चाहता हूं ।

संशोधन सदन की अनुमति से वापिस लिये गये ।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है :

"खंड ४ विधेयक का अंग बने ।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

खंड ४ विधेयक में जोड़ दिया गया ।

खंड ५—(अवकाश की कुल अवधि इत्यादि)

श्री के० के० बसु : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

(१) पृष्ठ ३ पंक्ति २१ में "three years" ["तीन वर्ष"] के स्थान पर "one-twelfth of the period spent by him on actual service or three years whichever is greater" ["उसके वास्तविक सेवाकाल का १/१२वां भाग अथवा तीन वर्ष जो भी अधिक हो"] आदिष्ट किया जाय ।

(२) पृष्ठ ३ पंक्ति ३१ में "five months" ["पांच महीने"] के स्थान पर "three months" ["तीन महीने"] आदिष्ट किया जाय ।

(३) पृष्ठ ३ पंक्ति ३२ में "sixteen months" ["सोलह महीने"] के स्थान पर "ten months" ["दस महीने"] आदिष्ट किया जाय ।

मान लीजिये कि कोई न्यायाधीश सात या आठ वर्ष वास्तव में सेवा करता है और उसे ३ वर्ष का अवकाश दिया जाता है तो यह उचित नहीं होगा; उसे तीन वर्ष के अवकाश का उपयोग करने का अधिकार नहीं है । उसके वास्तविक सेवा काल का १/१२ वां भाग उसे अवकाश मिलना चाहिये । जो न्यायाधीश १६ वर्ष या अधिक की सेवा करते हैं उनके लिये इतना आवकाश ठीक है ।

दूसरे संशोधन में तीन महीने का समय दिया है । पांच महीने का समय अनुपात की दृष्टि से उचित नहीं लगता है । अब समय बदल गया है । २६ जनवरी, १९५० से, जब से नया संविधान क्रियान्वित हुआ है, बहुत सारे परिवर्तन हुए हैं और भविष्य में भी होने की आशा है । अतः

न्यायाधीशों को भी अन्य जन सेवकों की तुलना में अधिक अवकाश नहीं लेना चाहिये।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन प्रस्तुत किये गये।

डा० काटजू : माननीय सदस्य से मैं प्रार्थना करूंगा कि वह अपने संशोधन वापिस ले लें। महालेखापाल न्यायाधीशों का लेखा रखते हैं। मान लीजिये किसी न्यायाधीश की दो वर्ष की छुट्टियां शेष हैं। हम कहते हैं कि आपको एक साथ १६ महीने का अवकाश मिल सकता है उससे अधिक नहीं। यदि आप छुट्टी लेते हैं तो प्रथम मास में ४,००० रुपये फिर चार या पांच महीने २,००० रुपये और शेष दस महीने तक १,१०० रुपये मिलेगा। यह एक ऐसा वित्तीय नियंत्रण है जिसके कारण कोई भी न्यायाधीश तब तक अवकाश नहीं लेता है जब तक कि बिल्कुल ही मजबूर न हो जाय। निवृत्ति-वेतन के लिए उसके अवकाश की गणना करना एक दूसरा प्रतिबन्ध और भी है। यह दोनों नियंत्रण इतने कठोर हैं कि इस स्वातंत्र्य का उपयोग कभी व्यवहार में नहीं हो पाता है। यह तो केवल आकस्मिकताओं के लिए हैं। कुछ अपवाद हो सकते हैं, जैसे नासूर (केन्सर) या फेफड़ों की खराबी के कारण उसे १२ महीने का अवकाश लेना पड़ा। ऐसे मामलों में भी १,१०० रुपये काफ़ी नहीं हो सकते हैं। माननीय मित्र से मैं कहूंगा कि वह विश्वास रखें कि इससे सार्वजनिक धनकोष को कोई हानि नहीं पहुंचती है। तीन या चार वर्ष तक की छुट्टियां इकट्ठी हो सकती हैं। दो वर्ष तक आधे वेतन पर छुट्टियां, और आगामी तीन वर्ष तक अनिश्चित काल के लिए बिना वेतन के भी छुट्टियां मिल सकती हैं। मैं जानता हूं कि लम्बे अवकाश से काफ़ी परिवर्तन होता है किन्तु जहां तक न्यायाधीशों की बात है उनमें से बहुत से न्यायाधीश वृद्ध हैं जो कभी भी रोगी हो सकते हैं। अतः अवकाश लेने का उन्हें अधिकार है। जब वे अधिकारी हैं तो उन्हें अवकाश मिलना ही चाहिये। मैं फिर कहूंगा कि यह नियम बहुत दिन से चला आ रहा है और इससे किसी को कोई हानि नहीं हुई है।

श्री के० के० बसु : मैं निवेदन करता हूं कि मेरे संशोधन पर मौखिक मतदान लिया जाय।

सभापति महोदय द्वारा सभी संशोधन मतदान के लिए प्रस्तुत किये गये और अस्वीकृत हुए।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है :

"खंड ५ विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

खंड ५ विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड ६ से १३ तक विधेयक में जोड़ दिये गये।

खंड १४--(न्यायाधीशों को देय निवृत्ति-वेतन)

श्री के० के० बसु : मैं प्रस्ताव करता हूं :

पृष्ठ ५ पंक्ति २ में "twelve years" ["बारह वर्ष"] के स्थान पर "eight years" ["आठ वर्ष"] आदिष्ट किया जाय।

अधिकतम निवृत्ति-वेतन प्राप्त करने के लिए बारह वर्ष का समय जो रखा गया है उसे घटा कर आठ वर्ष कर देना चाहिये ताकि इस कार्य के लिये अच्छे व्यक्ति मिल सकें। जब आपने यह नियम बना दिया है कि हमारे न्यायाधीश ६० वर्ष की उम्र में अवकाश प्राप्त कर लें तो शायद ही कोई न्यायाधीश ऐसा हो जो अधिकतम निवृत्ति वेतन प्राप्त करने की सीमा तक पहुंच

[श्री के० के० बसु]

सके । इसलिये इस अवधि को घटा देना चाहिये । यदि हम ऐसा कर देंगे तो इन स्थानों पर कार्य करने के लिए हमें अच्छे व्यक्ति मिल सकेंगे ।

सभापति महोदय द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया ।

डा० काटजू : इस खंड में निवृत्ति वेतन प्राप्त करने के अधिकार की व्यवस्था की गई है । तीन आकस्मिकताओं का इसमें उल्लेख है । बारह वर्ष तक सेवा कीजिये या वृद्धावस्था के कारण अवकाश प्राप्त कीजिये या डाक्टरी आधार पर सेवा करने के लिये अयोग्य प्रमाणित होने पर मान लीजिये कि किसी न्यायाधीश की नियुक्ति ४५ वर्ष की अवस्था में होती है तो इस प्रकार वह ५७ वर्ष की अवस्था में अवकाश प्राप्त करने का अधिकारी होगा किन्तु माननीय सदस्य के संशोधन के अनुसार तो वह ५३ वर्ष की अवस्था में ही अधिकारी हो जायगा । मैं यह चाहता हूं कि प्रत्येक न्यायाधीश के अनुभव एवं उसके ज्ञान का उपयोग बारह वर्ष तक तो हम कर सकें । हम यह चाहते हैं कि उसका अधिक से अधिक उपयोग किया जाय ।

श्री के० के० बसु : क्या आपका अभिप्राय यह था कि जिस प्रकार असैनिक सेवा के कर्मचारी १५ वर्ष की सेवा करने के उपरांत निवृत्ति-वेतन पाने के अधिकारी हो जाते हैं, उसी प्रकार ये न्यायाधीश भी बारह वर्ष की सेवा करने के बाद अधिकारी हो जायेंगे ?

डा० काटजू : जी हां ।

श्री के० के० बसु : तब मैं भूल में था । मैं अपना संशोधन वापिस लेता हूं ।

संशोधन सदन की अनुमति से वापिस लिया गया ।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है :

"खंड १४ विधेयक का अंग बने" ।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ ।

खंड १४ विधेयक में जोड़ दिया गया ।

खंड १५ से २५ तक विधेयक में जोड़ दिये गये ।

प्रथम अनुसूची

श्री के० के० बसु : मैं प्रस्ताव करता हूं :

(१) पृष्ठ ७ पंक्ति २० में "seven years" ["सात वर्ष"] के स्थान पर "five years" ["पांच वर्ष"] आदिष्ट किया जाय ।

(२) पृष्ठ ७ पंक्ति २४ में "seven" ["सात"] के स्थान पर "five" ["पांच"] आदिष्ट किया जाय ।

(३) (i) पृष्ठ ७ पंक्ति ३१ में "shall be classified as follows" ["इस प्रकार से वर्गीकृत किया जायेगा"] के स्थान पर "shall include service as a judge and/or Chief Justice in any High Court" ["न्यायाधीश अथवा किसी उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधिपति के रूप में किये गये काम को सम्मलित किया जायेगा"] आदिष्ट किया जाय ।

(ii) पंक्तियां ३२ तथा ३३ निकाल दी जायं ।

मैं यह तो नहीं कहता कि निवृत्ति-वेतन पाने के लिए पूर्व सेवा की आवश्यकता नहीं

है किन्तु इतना अवश्य कहता हूं कि यह समय सात वर्ष से घटाकर पांच वर्ष कर दिया जाय। माननीय गृह-कार्य मंत्री ने स्वयं यह कहा है कि कोई भी व्यक्ति जो पांच वर्ष तक सेवा नहीं कर सकता है न्यायाधीश नहीं नियुक्त किया जा सकता है। कई ऐसे अवसर आ सकते हैं जब कि यह नियम संभव नहीं हो सकता है। आवश्यकता पड़ने पर एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय को न्यायाधीशों का स्थानान्तरण एवं थोड़े समय के लिए अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों की नियुक्ति करने का भी उपबन्ध है। अतः इस नियम में कोई तुक नहीं है कि एक व्यक्ति जिसने कम से कम सात वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में कार्य किया है वही आधारभूत निवृत्ति वेतन पाने का अधिकारी हो सकता है। हमारी धारणा यह है कि कम से कम समय पूरा करने का उपबन्ध प्रशासनिक अनुभव के न्यायाधीशों को सुविधा देने के लिए है। अतः जिस प्रकार माननीय गृह कार्य मंत्री के कुछ संशोधनों को मैं ने मान लिया है, उसी प्रकार मैं प्रार्थना करता हूं कि वह भी मेरे संशोधनों को स्वीकार कर लें।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन प्रस्तुत किये गये।

डा० काटजू : इन मामलों में सौदे-बाज़ी करने का कोई प्रश्न नहीं है। निवृत्ति-वेतन की व्यवस्था इस प्रकार है कि यदि आप सात वर्ष काम करने के पश्चात् अवकाश ग्रहण करें तो आप को ५,००० रुपये का निवृत्ति-वेतन मिलेगा जिसे 'आधारभूत निवृत्ति-वेतन' कहते हैं। यदि आप ने आठ वर्ष काम किया है तो प्रति वर्ष के लिये आप को ४७० रुपया और अधिक मिलेगा। इस के अतिरिक्त आप के निवृत्ति-वेतन में १,००० रुपया और जुड़ जायेगा, जो ४७० रुपये के अतिरिक्त होगा। यदि आप की नौकरी नौ वर्ष की हो तो आप का निवृत्ति-वेतन ७,००० रुपये हो जायेगा और यदि दस वर्ष की हो तो १०,००० रुपये हो जायेगा। परन्तु १०,००० रुपया अन्तिम सीमा है। यदि आप बारह वर्ष कार्य करें तो १०,००० रुपये आप को निवृत्ति-वेतन मिलेगा तथा ४७०×१२ रुपये निवृत्ति-वेतन के अतिरिक्त आप को मिलेंगे। यहां पर फिर १६,००० रुपये की एक अन्तिम सीमा निर्धारित की गई है। और यदि किसी ने केवल छै वर्ष कार्य किया हो तो उसके लिये ६,००० रुपये की एक धन राशि निर्धारित है।

मेरे माननीय मित्र ने जो व्यवस्था अपने सुझाव में रखी है वह बिलकुल भिन्न है। वह कहते हैं कि सात वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया जाये तथा वार्षिक वृद्धि किसी प्रकार की न दी जाये। उनके संशोधन संख्या २१ में सुझाव दिया गया है कि पंक्ति ३२ तथा ३३ को निकाल दिया जाये। मैं यह नहीं कह सकता हूं कि वे उस पर वह आग्रह करना चाहेंगे या नहीं।

श्री के० के० बसु : यदि वे संशोधन संख्या १९ तथा २० को स्वीकार कर लें तो २१ तथा २२ की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। संशोधन १९ तथा २० तो एक ही हैं। मैं चाहता हूं कि सात वर्ष के बजाये पांच कर दिया जाये। संशोधन संख्या २१ में मैं ने कहा है कि मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य न्यायाधीशों में निवृत्ति-वेतन के मामले में कोई भेद नहीं किया जाना चाहिये।

डा० काटजू : हम चाहते हैं कि हमारे न्यायाधीश अधिक समय तक काम करते रहें तथा कम से कम सात वर्ष तो अवश्य ही कार्य करें। मेरे माननीय मित्र सात वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष करना चाहते ह।

[डा० काटजू]

यदि कोई न्यायाधीश पांच वर्ष के लिये आता है तो उसके बाद उसे ५,००० रुपये का अधारभूत निवृत्ति-वेतन (बेसिक पेंशन) तथा ४७०×५ अर्थात २३५० रुपये देने से उसका कुल निवृत्ति-वेतन ७३५० रुपये हो जायेगा। हमारा कहना यह है कि यदि उसने सात वर्ष कम कार्य किया है तो उसे ६,००० प्रतिवर्ष की एक निर्धारित धन राशि हीं निवृत्ति-वेतन के रूप में दी जाये। नियुक्ति करने वाला प्राधिकार इस बात का ध्यान रखेगा कि नियुक्ति उसी की की जाये जो चार, पांच या छै वर्ष काम कर सकता हो। किसी विशेष कार्य के लिये विशेष परिस्थितियों में इस नियम को भंग भी किया जा सकता है। इस लिये सारे विवाद का सार यह है कि हम ने ६,००० रुपये प्रति वर्ष के निवृत्ति-वेतन का जहां उपबंध किया है वहां वे १,३०० रुपया और देना चाहते हैं। अभी नियम ऐसे हैं कि जब तक कोई न्यायाधीश सात वर्ष कार्य न करे वह एक पैसा भी पान का अधिकारी नहीं होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये हम ने ६,००० रुपये का उपबंध किया है। और शेष बातें वहीं हैं जो पहले थीं तथा जिन को बदलने का कोई कारण नहीं है।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन मतदान के लिये रखे गये तथा अस्वीकृत हुए।

श्री के० के० बसु : श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं :

(१) पृष्ठ ८ में—

(१) पंक्ति ५ हटा दी जाये।

(२) पंक्ति ६ में "Grade II" ["ग्रेड २"] शब्द हटा दिये जायें।

(२) पृष्ठ ८ में—

पंक्तियां २० से लेकर २४ तक हटा दी जायें।

(३) पृष्ठ ८, पंक्ति १८ में,

शब्द '२०,००० रुपये' के स्थान पर शब्द '१६,००० रुपये' रख दिया जाये।

मेरा आशय यह है कि जहां तक निवृत्ति-वेतन का सम्बंध है न्यायाधीश तथा मुख्य न्यायाधिपति में कोई विभेद नहीं किया जाना चाहिये। इसी लिये हम ने संविधान में उन के वेतनों के अंतर को घटा कर केवल पांच सौ रुपया कर दिया है। इस का कारण यह है कि मुख्य न्यायाधिपति को न्यूनाधिक वही काम करना पड़ता है जो अन्य न्यायाधीश करते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि मुख्य न्यायाधिपति को अपने साधारण कार्य के अतिरिक्त कुछ कार्यपालिका तथा प्रशासनिक कार्य भी करने पड़ते हैं। इसी लिये दोनों के वेतनों में अधिक अंतर नहीं होना चाहिये। पहले एक दो उच्च न्यायालयों को छोड़ कर किसी भी भारतीय को मुख्य न्यायधिपति के पद पर नहीं नियुक्त किया जाता था। अंग्रेज़ों के शासन में मुख्य न्यायाधिपति का पद अंग्रेज़ों के लिये ही होता था। इसलिये मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य न्यायाधीशों के वेतन में बहुत अंतर होता था। इसीलिये हम ने वेतन के इस अंतर को घटा दिया है। तब फिर निवृत्ति-वेतन में अंतर रखने का क्या कारण है। निवृत्ति-वेतन के लिये मुख्य न्यायाधिपति तथा न्यायाधीश को एक ही श्रेणी में रखा जाना चाहिये क्योंकि अवकाश ग्रहण करने के पश्चात इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है कि वह मुख्य न्यायाधिपति था या न्यायाधीश था।

अन्तिम संशोधन के सम्बंध में भी मुझे वही बात कहनी है। बिना इसका विचार किये कि उसने कितने दिन काम किया है उसे निवृत्ति-वेतन का अधिकार

दे दिया गया है । इस का एक उदाहरण मैं आपको देता हूं । कहा जाता है कि बिहार राज्य सरकार चाहती थी कि उच्च न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश जिसे कि वरिष्ठता के अनुसार मुख्य न्यायाधिपति नियुक्त किये जाने का अधिकार पहुंचता था, मुख्य न्यायाधिपति के पद पर नियुक्त न किया जाये । इसी लिये राज्य के महाधिवक्ता को यह पद स्वीकार करने के लिये राजी किया गया । उन्होंने केवल दो वर्ष तथा कुछ मास यह कार्य किया । हो सकता है यह केवल अफ़वाह हो तथा इसमें कोई सत्यता न हो परन्तु बिहार की जनता इसकी खुले आम चर्चा कर रही है । इस प्रकार वरिष्ठता का अधिकार छीना नहीं जाना चाहिये । हो सकता है कि श्री लक्ष्मी पति झा की नियुक्ति बिहार राज्य के हित में हो, परन्तु आश्चर्य तो केवल इस बात का है कि देश भर में ऐसे व्यक्ति मिलते ही नहीं हैं जो बुढ़ौती के निकट पहुंच न चुके हों ।

इसीलिये मैं माननीय मंत्री से निवेदन करता हूं कि वह मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लें । इसीलिये मैं यह भी सुझाव देता हूं कि किसी भी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त न किया जाये जो बुढ़ौती के निकट पहुंच रहा हो तथा निवृत्ति-वेतन पाने का अधिकार बिल्कुल नहीं होना चाहिये ।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन प्रस्तुत किय गये ।

डा० काटजू : पुराने समय में कलकत्ता उच्च न्यायालय में न्यायाधीश तथा मुख्य न्यायधिपति के वेतन में २,००० रुपये का अंतर होता था जो वास्तव में बहुत अधिक था । फिर भी दोनों के निवृत्ति-वेतनों में तो सदा ही अंतर रहा है इसलिये यह सुझाव कि दोनों के निवृत्ति-वेतनों में कोई अंतर न रखा जाय बड़ा विचित्र जान पड़ता है । न्यायिक कार्यों में मुख्य न्यायाधिपति तथा न्यायाधीश में कोई अंतर नहीं होता है । परन्तु जहां तक अन्य बातों का सम्बंध है, जैसे छोटे न्यायालयों तथा उच्च न्यायालय के प्रशासन, तो इस का सारा भार मख्य न्यायाधिपति पर ही पड़ता है । मैं स्वयं अपने ज्ञान से जानता हूं कि इस कार्य में प्रति दिन दो घंटे का समय खर्च करना पड़ता है इस के लिये उसको अधिक वेतन दिया जाता है तथा उसे अधिक निवृत्ति-वेतन पाने का अधिकार होता है । इस लिये मैं यह सुझाव मानने के लिये तय्यार नहीं हूं कि दोनों के निवृत्ति वेतनों में कोई अन्तर न रखा जाये ।

सभापति महोदय द्वारा संशोधन मतदान के लिये रखे गये तथा अस्वीकृत हुए ।

डा० काटजू : मैं प्रस्ताव करता हूं :

पृष्ठ १ पंक्ति १२ में "exceeding" ["अधिक"] शब्द के स्थान पर "such additional pension together with the additional or special pension, if any, which he is entitled under the ordinary rules of his service, shall exceed" ["ऐसा अतिरिक्त निवृत्ति-वेतन, उस अतिरिक्त अथवा विशेष निवृत्ति-वेतन समेत, यदि कोई हो, जिस का उसे अपनी नौकरी के साधारण नियमों के अनुसार पाने का अधिकार हो, अधिक होगा ।"] शब्द रख दिये जायें ।

यह संशोधन केवल भ्रान्ति को दूर करने के लिये रखा गया है । मान लीजिये किसी अधीनस्थ न्यायाधीश को कुछ वेतन मिलता है ; जिला न्यायाधीश हो जाने पर उस के निवृत्ति-वेतन में वार्षिक वृद्धि हो जाती है । उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने पर उसे एक और

[डा० काटजू]

वार्षिक वृद्धि पाने का अधिकार हो जाता है। तो ऐसी दशा में यह दोनों वार्षिक वृद्धियां जोड़ दी जायेंगी तथा इनका योग ५०० रुपये प्रति-वर्ष तथा कुल २,५०० रुपये से अधिक नहीं होना चाहिये। यह केवल एक स्पष्टीकरण है।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है :

पृष्ठ ९ पंक्ति १२ में "exceeding" 'अधिक"] शब्द के स्थान पर "such additional pension together with the additional or special pension, if any, to which he is entitled under the ordinary rules of his service, shall exceed" ["ऐसा अतिरिक्त निवृत्ति-वेतन, उस अतिरिक्त अथवा विशेष निवृत्ति वेतन समेत, यदि कोई हो, जिसका उसे अपनी नौकरी के साधारण नियमों के अनुसार पाने का अधि-कार हो, अधिक होगा"] शब्द रख दिये जायें।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

सभापति महोदय : प्रश्न यह है:

"कि प्रथम अनुसूची, संशोधित रूप में, विधेयक का अंग बने।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रथम अनुसूची, संशोधित रूप में, विधेयक में जोड़ दी गई।

दूसरी अनुसूची विधेयक में जोड़ दी ग

खंड १ विधेयक में जोड़ दिया गया।

विधयक का नाम तथा अधिनियमन सूत्र विधेयक में जोड़ दिये गए।

डा० काटजू : मैं प्रस्ताव करता हूं :

"विधेयक को, सशोधित रूप में, पारित किया जाये।"

चूंकि अभी थोड़ा समय शेष है, इसलिये उन माननीय सदस्यों को, जो प्रथम वाचन के समय बोलने के लिये बहुत इच्छुक थे, अब अवसर दिया जा सकता है कि वे अपने विचारों से सदन को लाभ पहुचावें।

सभापति महोदय: प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ :

"विधेयक को, संशोधित रूप में, पारित किया जाये।"

श्री जोकीम आल्वा : मैं विधेयक के मुख्य सिद्धान्तों का समर्थन करता हूं। इस दृष्टि से यह विधेयक वस्तुतः ठीक समय पर ही प्रस्तुत हुआ है कि उच्च न्यायालय के न्याया-धीशों को दलबन्दी का खिलौना न बनाया जाय। उनके साथ हमारे संविधान-उद्यान में गुलाब के फूल के समान व्यवहार किया जाना चाहिये। उन्हें न्यायालय के बाहर किसी से बातें न सुननी चाहियें। और न ही उन्हें बातें करनी चाहियें। मझे प्रसन्नता है कि माननीय गृहकार्य मंत्री ने यह विधेयक प्रस्तुत किया है। मैं यह बहुत पसंद करता यदि मैं उन्हें एक दिन के लिये भी किसी उच्च न्याया-लय या उच्चतम न्यायालय में बैठा देखता। यह बात मैं इस दृष्टि से कहता हूं कि सर्व-श्रेष्ठ वकीलों तथा मंत्रियों को इन कार्यों के लिये नामबद्ध करना चाहिये। निःसन्देह यह सत्य है कि हमारे महान् नियमनिर्माताओं में से एक ने, जो केंद्रीय विधान सभा के एक भूतपूर्व सदस्य थे, स्वर्गीय श्री अभ्यंकर ने नागपुर अधिकरण के समक्ष कहा था "मैं वकीलों में एक मनष्य होना चाहता हूं, न कि मनुष्यों में एक वकील बनाना।" हमारे वकीलों की यह प्रणाली व रीति होनी चाहिये कि

उनके लिये समय आ गया है कि वे अपनी सेवायें राष्ट्र को सौंप दें ।

हमें स्वर्ण नियम का खण्डन नहीं करना चाहिये । जहां तक संभव हो राज्यपाल या राजदूत या अन्य किसी उच्च पद पर न्यायाधीशों को नियक्त नहीं करना चाहिये । मैं यह कहूंगा कि हम राजनीतिक न्यायाधीश भी नहीं चाहते हैं । न्यायाधीश हानिहीन राजनीतिक सिद्धांतों की बातों में भाग ले सकते हैं परन्तु वे राजनीतिक मतभेदों में सम्मिलित नहीं होंगे । जिस दिन हमारे न्यायाधीश ऐसा करने लगेंगे, उस दिन हमारे राज्य की नींव टूट जायेगी । वे हमारे संरक्षक हैं । वे हमारे संविधान में गुलाब के पुष्प के समान हैं । हम उनका सम्मान करेंगे । हम इन गुलाब के पुष्पों को पददलित नहीं करेंगे । परन्तु उन्हें राजनीतिक मतभेदों से दूर अवश्य रहना चाहिये । उन्हें भ्रष्ट न होने में ख्याति प्राप्त करनी चाहिये ।

मुझे अपने महान नेताओं में से एक, डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, के परीक्षण की याद आती है, जिसमें माननीय सदस्य, श्री एन० सी० चटर्जी तथा श्री नन्दलाल शर्मा भी अभियुक्त थे । जब पांच सम्मानित न्यायाधीशों के समक्ष सरकारी महा अनप्रार्थी ने कहा कि "आप एक राजनीतिक जांच कर रहे हैं", तो सारे न्यायाधीशों ने अन्तर्बाधा की तथा कहा "क्या वे वह अपने शब्द वापस लेंगे ?" महा अनुप्रार्थी को अपने शब्द वापस लेने पड़े और उन्होंने दो बार कहा, "श्रीमान, मुझे क्षमा किया जाये ।" इससे प्रकट होता है कि वास्तविकता क्या है ।

हमें अपने न्यायाधीशों पर गर्व होना चाहिये । भारत-संघ का उच्चतम न्यायालय एक ऐसी संस्था है जिस पर वास्तव में हमें गर्व है । हम अपने अभिवक्ता संघ की उच्च परम्परायें स्थापित करेंगे इंग्लिस्तान तथा अमरीका की परम्परायों से इनकी भली प्रकार तुलना की जा सकेगी ।

श्री एच० एन० मुकर्जी (कलकत्ता उत्तर-पूर्व) : आजकल भारत में न्यायपालिका का कार्य १९५० से पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । इस कारण हमारे लिये इसकी ओर ध्यान देना अनिवार्य हो गया है कि हमारे उच्च तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश उन शर्तों की पूर्ति करते हैं जो देश उनसे चाहता है । अब हमारा एक संविधान है जो अपनी बहुत सी न्यूनताओं के होते हुए भी देश के नागरिकों को मूल अधिकारों का आश्वासन देता है । अतः उच्च तथा उच्चतम न्यायालयों में हमारे न्यायाधीशों का यह कर्त्तव्य है कि वे यह समझें कि वे मूल अधिकार क्या हैं । इसके अतिरिक्त यह देखना भी उनका कर्त्तव्य है कि नागरिकों के अधिकारों का खण्डन तो नहीं होता है । इस दृष्टि से हमारे लिये यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम ऐसी प्रत्येक अहतियात बरतें जिसके फलस्वरूप हमारे न्यायाधीश सिंह की भान्ति कार्य कर सकें ।

मुझे याद है कि स्वर्गीय श्री शरत चन्द्र बोस ने कलकत्ता बार लाइब्रेरी क्लब से, स्वयं अगवाई करके, एक संकल्प सर्वसम्मति से पारित कराया था । उसमें कहा गया था कि न्यायाधीशों को राज्यपालों तथा अन्य प्रशासनाधिकारियों से मित्रों की भान्ति वार्तालाप नहीं करना चाहिये । मामला यहां तक बढ़ा कि उस क्लब के सदस्यों ने एक संकल्प सर्वसम्मति से पारित किया कि न्यायाधीशों का व्यवहार ऐसा नहीं होना चाहिये जैसा कि यदाकदा करते देखा गया है । यह इस कारण हुआ कि उस समय, जहां तक मुझे याद है, हमारे मित्र माननीय गृह-कार्य मंत्री पश्चिम बंगाल के राज्यपाल थे । वह इन न्यायाधीशों से सम्भवतः इस विचार से मिलना चाहते थ कि वह स्वयं एक वकील थे तथा न्यायाधीश

[श्री० एच० एन० मुकर्जी]

भी उनके साथी-वकील थे । न्यायपालिका को धन देने के बारे में देश बड़ा ही उदार है तथा देश को यह आशा करने का अधिकार है कि न्यायपालिका का व्यवहार ऐसा हो जैसा कि होना चाहिये ।

यह भी कहा गया है कि यह उचित नहीं है कि हमारे न्यायाधीश वृद्धावस्था के पास किन्हीं पदों पर नियुक्त होने की आशा करें । यदि आवश्यक हो तो हमें न्यायाधीशों के काम करने की समय-अवधि बढ़ा देनी चाहिये ।

मैं जानता हूं कि सफल वकील बनने के लिये कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है । परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि एक सफल वकील की विषेशतायें एक न्यायाधीश की भी विशेषतायें हों । न्यायाधीश को शान्त स्वभाव का होना चाहिये । हमें लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमारे देश में शास्त्रीय स्वभाव के वकील नहीं हैं । हमने न्यायशास्त्र में कोई महत्वपूर्ण योग नहीं दिया है, और हम एक सफल वकील तथा एक सफल न्यायाधीश के बीच एक प्रकार का अनन्यीय-करण मानते हैं । यह नहीं होना चाहिये । जहां तक न्यायपालिका में नियुक्तियों का संबंध है, हम चाहते हैं कि हमारे न्यायाधीश न्यायिक व्यक्ति हों, जिनमें पक्षपात न हो, जिनका सुझाव इधर या उधर न हो, जो अनावश्यक रूप में प्रसिद्धि लोलुप न हों, जो "चुस्त" समाज के रंग ढंग के प्रति झुकने वाले न हों ।

जिस समय निवारक निरोध संबंधी एक मामला पांच न्यायाधीशों के पूर्ण न्यायालय के समक्ष आया उस समय कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक वार्ता फैली थी । तीन न्यायाधीशों का मत था कि निरोध होना चाहिये और दो न्यायाधीशों का मत था कि निरोध बुरा था । कुछ समय तक कलकत्ता उच्च न्यायालय में प्रत्येक व्यक्ति यह चर्चा सुनता रहा कि एक न्यायाधीश ने कुछ दबाब के कारण अपना निर्णय अन्तिम समय पर बदल दिया था । मैं यह नहीं कहता कि यह सूचना सत्य है । परन्तु इस प्रकार की बात इस कारण होती है कि हमारे न्यायालयों में ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें वे विशेषतायें नहीं हैं जो न्याया-धीश में होनी चाहियें । हम चाहते हैं कि सर-कार ऐसी योजनायें बनाये जिनसे इस देश में विधि जानने वाले विद्वानों में उत्साह उत्पन्न हो ताकि वे यह महसूस कर सकें कि न्याया-धीश बनकर वे वास्तव में ही अपने को राष्ट्र की सेवा में लगा रहे हैं । यदि हम ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति सुनिश्चित कर सकते हैं, केवल तब ही हमारी न्यायपालिका वे कार्य करेगी जो संविधान ने उन्हें सौंपे हैं । हमें यह सुनिश्चित करना है कि हमारे न्यायाधीश सिंहासन के नीचे दबे हुए नकली सिंह न होकर अपने अधिकारों के सिंह होंगे ।

श्री सिंहासन सिंह (जिला गोरखपुर—दक्षिण) : सभापति जी, यह जो विधेयक आज भवन के सामने उपस्थित है और अभी चन्द मिनटों में पास हो जायगा, बहुत ही आवश्यक विधेयक है और इसके अनुसार जो कुछ सुविधायें जजों को मिलनी चाहियें, वह उनको मिलें और आज भी उचित ढंग से मिल रही हैं ।

इस विधेयक के सम्बंध में मुझे एक बात कहनी है कि जहां संविधान के आर्टिकल २२० के अनुसार कोई जज रिटायरमेंट के बाद प्रैक्टिस नहीं कर सकता और उसी के अनु-रूप इस विधेयक में रिटायर होने वाले जजों के लिये ६ हज़ार रुपये सालाना पेंशन का प्राविज़न किया गया है । ऐसे लोगों के लिये जो कि सात वर्ष से भी कम सर्विस कर चुके हों, अर्थात् जो वकील रहने की अवस्था म जज बनें और सात वर्ष के अन्दर रिटायर हो जायें और उन्हें सात वर्ष पूरा करने की अवधिन

मिले तब भी उन्हें कम से कम ६ हज़ार रुपये की पेंशन मिले और सरकार की ओर से उनके रिटायर होने के बाद उनके जीवन यापन के लिये समुचित प्राविज़न हो । यह जो प्राविज़न इस विधेयक में रक्खा जा रहा है यह बहुत ठीक और उचित है और मैं भी चाहता हूं कि इस तरह का प्राविज़न होना चाहिये । साथ ही मैं यह भी कहना चाहता हूं कि जहां जजेज को रिटायरमेंट के बाद पुनः प्रैक्टिस करने की आज्ञा नहीं है, उसी तरह अगर विधेयक में इस बात का भी प्राविज़न कर दिया जाता जिससे कोई जज रिटायर होने के बाद किसी सरकारी नौकरी में पुनः नहीं रक्खा जायगा तो यह हमारे जजों की आज़ादी और उनकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता में, अधिक सहायक होता । जब से हमारी अपनी सरकार आई ह तब से ३० हाईकोर्ट के जजेज रिएपायन्ट हो चुके हैं । यह बात मेरे एक प्रश्न के उत्तर से जो सरकार ने दिया, मालूम हुई और उन रिएपान्यटमेन्टस् में एक सबसे अनोखी बात यह हुई है कि एक जज़ महोदय जो सन् १९३६ में रिटायर हुए, उनको हमारी इस सरकार द्वारा सन् १९४७ में पुनः नियुक्त किया गया । वे साठ वर्ष की उम्र में अपने कार्यभार से मुक्त कर दिये जाते हैं और ११ वर्ष के रिटायटरमेंट के बाद इस सरकार द्वारा उनको पुनः ७१वें वर्ष में एपायन्ट किया जाता है और शायद दो वर्ष में वे स्वर्गधाम को भी चले गये, पता नहीं कि क्या हुआ, सिर्फ दो वर्ष वे सर्विस में रहे । मेरा यह कहना है कि जजों को जजी की गद्दी पर बैठते हुए कभी उनके मन में यह भावना नहीं होनी चाहिये कि उनकी पुनः नियुक्ति होने वाली है क्योंकि अगर यह भावना उनके मन में रहेगी तो इससे उनके स्वतंत्र और निष्पक्ष व्यवहार में बाधा पड़ेगी और जिस वक्त गवर्नमेंट के विरुद्ध कोई अभियोग होगा और उनके सामने पेश होगा तब उनको उसमें ठीक बेलेंस मेंटेन करने में कुछ दिक्कत और मुश्किल होगी और वे जिस प्रकार निष्पक्षता का व्यवहार उनसे अपेक्षित हैं, उसको मेंटेन करने में दिक्कत महसूस करेंगे जैसे कि अभी श्री आल्वा साहब ने कहा कि जब सुप्रीम कोर्ट के सामने श्री श्यामाप्रसाद मुकर्जी का केस पेश था तब वकील सरकार ने उसको शायद एक पोलिटिकल नेचर के केस का रंग देना चाहा और तब उन्होंने उसके लिये चीफ़ जस्टिस से डांट खायी और वह उचित ही था जब उन्होंने यह कहा कि वह इस सम्बन्ध में किसी रूप से भी गवर्नमेंट की मातहती कबूल करने को तैयार नहीं हैं । और जज़ेज इस तरह से तभी व्यवहार कर सकते हैं जब उनके दिल में यह ख्याल हो कि उनको गवर्नमेंट से अपनी सर्विस के बाद किसी तरह की सहायता और कृपा मिलने वाली नहीं है, लेकिन अगर जज के मन में यह ख्याल रहेगा कि रिटायरमेंट के बाद मुझे गवर्नमेंट की कृपा पर निर्भर रहना पड़ेगा और मैं उसी अवस्था में कोई लाभ का पद प्राप्त कर सकूंगा तो वह इस तरह आज़ादी और निष्पक्षता के साथ अपना काम नहीं कर सकेंगे । इसलिये यह बहुत ज़रुरी है कि जज़ों को रिटायरमेंट के बाद उनको पुनः नियुक्त न किया जाय, क्योंकि इस चीज़ के रहने से उनके स्वतंत्र और निश्पक्ष रीति से काम करने में बाधा पड़ने की सम्भवना है । यह नितान्त आवश्यक है कि जनता के दिल में यह भावना बनी रहे कि हमारे जजेज़ पूर्णरूपेण स्वतंत्र और हर तरह से एग्ज़ीक्यूटिव असर और दबाव से बाहर हैं और उनकी अदालत में चाहे छोटा हो या बड़ा सब के साथ एक सा न्याय किया जायगा और न्याय देने में किसी तरह का भी फर्क नहीं बर्ता जायगा और यह तभी हो सकता है जब कि हमारे जज लोग बिल्कुल निष्पक्ष हों और उनमें किसी तरह की आकांक्षा न रहे, क्योंकि हम यह जानते हैं कि ज्यों २ आदमी वृद्ध होता जाता है उसमें मोह माया बढ़ती जाती है और हर एक आदमी सोचता है कि अभी नाती को पढ़ाना है या नतनी की शादी करनी

[श्री सिंहासन सिंह]

है और यह मनुष्य स्वभाव है कि वह सोचता है कि मैं अभी कोई नौकरी दुबारा क्यों न कर लूं और मेरा कहना है कि जहां यह भावना उसके दिल में आयी, तो उसकी आज़ादी की भावना में कुठाराघात होने की संभावना है। मैं सरकार से कहना चाहूंगा कि आपका तीस, तीस हाईकोर्ट के जज़ेज को रिएपायन्ट करना इस आकांक्षा की भावना को उनके दिलों में प्रज्ज्वलित करना है और उसके मन में सदा यह बना रहेगा कि अगर मैं सरकार का कृपा-पात्र बना रहा और सरकार मुझ से खुश रही तो मुझे रिटायर होने के बाद फिर कहीं न कहीं एपायन्ट कर लिया जायगा और इस भावना के रहते वह आज़ादी और पूर्ण निष्पक्षता से अपनी ड्यूटी अंजाम नहीं दे सकेगा और मैं चेतावनी देना चाहता हूं कि जजों द्वारा इस तरह का आचरण देश और प्रजातंत्र के हित में नहीं होगा क्योंकि लोगों का विश्वास, हमारी जुडिशयेरी में नहीं रहेगा। जज के पद पर जो आसीन हो उसे तो शतप्रतिशतः निष्पक्ष और स्वतंत्र होना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं आपको बतलाऊं कि एक वक्त जब श्री टंडन जी यू० पी० असेम्बली के स्पीकर थे, तो उन्होंने यह ऐलान किया था कि मैं इस पद पर तभी तक बना रहूंगा जब तक विरोधी पक्ष का एक भी मेम्बर मेरे प्रति अविश्वास की भावना नहीं रखता और अगर विरोधी पक्ष के एक भी आदमी को मेरी निष्पक्षता में विश्वास न हो तो मैं इस गद्दी को तत्काल छोड़ दूंगा, मैं उसी तरह की भावना अपने जजों में देखना चाहता हूं। इसके अलावा आप जानते हैं कि हाईकोर्ट के जज ६० वर्ष की अवस्था में रिटायर होते हैं और सुप्रीम कोर्ट के जज ६५ वर्ष की अवस्था में रिटायर किया जाता है और मैं समझता हूं कि इस अवस्था में कोई काम संभालना ठीक भी नहीं रहता हैं क्योंकि यह अवस्था तो सिर्फ शान्ति से भगवत भजन करने की होती है, यह अवस्था दुबारा नौकरी करने की नहीं होती है। मैं सरकार से कहूंगा कि वह इधर ध्यान दे और ऐसा नियम बनाये जिससे वे रिटायर होने के बाद दुबारा नौकरी न कर सकें। गृह विभाग की रिपोर्ट से मालूम होता है कि १,३०० अवकाश प्राप्त व्यक्तियों की पुन-र्नियुक्तियां हुई हैं जब कि बेकारी बढ़ रही है। बिल्कुल उल्टा किया गया है। जैसा कि मैंने कहा था—एक तरफ़ तो देश में बेकारी बढ़ती जा रही है और दूसरी तरफ़ सरकार रिटायर व्यक्तियों की पुनर्नियुक्ति करती है। यह कुछ ठीक नहीं जंचता। एक तरफ़ तो देश में बेकारी फैल रही है, लोगों को काम नहीं मिल रहा है और दूसरी तरफ़ इस तरह के रिएपायन्टमेंट्स किये जाते हैं आखिर किसी जगह पर तो एक आदमी को रिटायर करना ही पड़ेगा और मुझे बड़ी खुशी हुई कि जब हमारे माननीय मंत्री ने पेप्सू में एक सभा में बोलते हुए कहा था कि वकीलों को भी रिटायर करने की अवधि मुकर्रर होनी चाहिये, उनके लिये भी एक मियाद नियत होनी चाहिये जिसके बाद वह आगे प्रैक्टिस का धंधा न कर सकें और उन्होंने आगे कहा था कि अगर ऐसा न किया जायगा तो समाज उनको रिटायर करेगा। मैंने उस अवसर पर उनको इस कथन के लिये मुबारकबाद दी थी और उनके विचार का समर्थन किया था। जजों के रिटायर होने के बाद उनकी पुनः नियुक्ति हो, यह देश के लिये एक बड़े संकट की बात है। मैं चाहता हूं कि गवर्नमेंट मेरे सुझाव पर गौर करे इन शब्दों के साथ मैं इस बिल का समर्थन करते हुए अपना भाषण समाप्त करता हूं और चाहता हूं कि यह इस सदन द्वारा शीघ्र से शीघ्र पारित किया जाय।

डा० सुरेश चन्द्र (औरंगाबाद) : सभा-पति महोदय, मुझे इस समय केवल दो मिनट में एक बात कहनी है, और वह यह कि यह विधे-यक जो हमारे सामने प्रस्तुत हुआ है, वह सिर्फ पार्ट ए स्टेट्स के लिये है। मैं समझता हूं

कि यह बहुत ही आवश्यक विधेयक है, लेकिन इस विधेयक में सिर्फ जो पार्ट ए स्टेट्स के हाई कोर्ट्स हैं उन............

सभापति महोदय: कदाचित माननीय सदस्य यहां नहीं थे। माननीय गृह-कार्य मंत्री ने इसका निर्देश किया था तथा प्रश्न के इस पहलू का संतोषजनक उत्तर दिया था। यदि वह कोई और बात पूछना चाहते हैं तो पूछ सकते हैं।

डा० सुरेश चन्द्र: धन्यवाद, श्रीमान।

डा० काटजू: सभापति महोदय, इस विधेयक ने, जैसा कि आपने देखा, बहुत से तर्क उत्पन्न किये हैं जो वास्तव में विधेयक से किसी भी प्रकार उत्पन्न नहीं होते हैं। परन्तु वे बड़े ही महत्वपूर्ण विषय हैं। मेरे माननीय मित्र प्रो० मुकर्जी ने, जो अब यहां नहीं हैं, अपने बड़े ही निर्मल तथा ओजस्वी ढंग से एक सफल वकील तथा एक सफल न्यायाधीश के बीच भेद बताया था। मैं उससे पूर्णतया सहमत हूं। परन्तु कठनाई यह है कि कोई ऐसा मापक-यन्त्र नहीं है जिसके द्वारा आप उस सफल न्यायाधीश का पता लगा सकें जिसकी कल्पना मेरे माननीय मित्र के मस्तिष्क में है। वास्तव में उन्हें राजनीति का अनुभव है और वहां वे राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आते है। राजनीतिज्ञों के लिये अब यह साधारण सी बात हो गई है कि वे अवसर प्राप्त होते ही वकीलों को गालियां देते हैं। उन्होंने यह बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया। किन्तु मेरे माननीय मित्र एक बात पर विचार करना भूल गये। एक न्यायाधीश को सर्वप्रथम गवाही लेनी पड़ती है। न्यायाधीश सदैव ही संविधान से उत्पन्न होने वाली अच्छी बातों या संवैधानिक वक्रोक्तियों या विधियों के निर्वचन की ही जांच नहीं करता है। मूल बात यह है कि सत्य कौन कह रहा है। क्या यह मामला झूठा है या सच्चा है? वह कौन पता लगाता है? एक प्रोफेसर नहीं। मैं गभीरता से कह रहा हूं कि राजनीति का प्रोफसर नही, और न ही विधि का प्रोफसर। कौन व्यक्ति सच बोल रहा है और कौन झूठ, यह बात वही वकील समझ सकता है जो वर्षों से सफल वकालत करता आया है, जो समाज के प्रत्येक वर्ग के सम्पर्क में आता है, जो उद्योगपतिओं और मजदूरों, नौकरीपेशे वाले लोगों, डाक्टरों तथा इंजीनियरों आदि से व्यवहार करता है। वह समाज के प्रत्येक वर्ग के मस्तिष्क की प्रवृत्ति, उसका दृष्टिकोण, उसकी इच्छा-अनिच्छाएं आदि समझता है और मैं आपको बतला सकता हूं कि ऐसे व्यक्ति में साक्ष्य की झूठ-सच समझने का पर्याप्त अनुभव होता है।

फिर, मेरे माननीय मित्रों ने न्यायाधीशों को न्यायाधिकरणों पर नियुक्त करने की बात कही। पारित किये जाने वाले प्रत्येक अधिनियम में औद्योगिक न्यायाधिकरण अथवा आयकर न्यायाधिकरण अथवा अपीलीय न्यायाधीकरण आदि की व्यवस्था रहती है और यह उपबन्ध रहता है कि उनमें निवृत्ति-प्राप्त अथवा मौजूदा न्यायाधीश ही हो सकते हैं। मेरे कुछ माननीय मित्रों ने कहा कि इन न्यायाधिकरणों पर जो व्यक्ति नियुक्त किए जा सकते हैं उनमें निवृत्ति-प्राप्त न्यायाधीश नहीं होने चाहियें, निवृत्ति-प्राप्त न्यायाधीशों को कहीं नियक्त नहीं किया जाना चाहिये। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि यदि न्यायाधीशों के निवृत्ति-प्राप्ति पर पुनः नियुक्त किए जाने की सम्भावना होगी तो वे अपने मौजूदा काम में ईमानदारी से काम नहीं कर पायेंगे क्योंकि निवृत्ति-प्राप्ति पर पुनः नियुक्ति की आशा में वे ऐसे न्याय-निर्णय दे सकते हैं जो सरकार के पक्ष में हों और अनचित हों। लेकिन यह बहुत गलत धारणा है। यदि न्यायाधीश ऐसा करेंगे तो दुनिया वालों पर, अधिवक्ता संघ पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। अपने आचरण द्वारा अधिवक्ता संघ ऐसे

[डा० काटजू]

न्यायाधीश को बतलाएगा कि "हमें आप पर कोई भरोसा नहीं है, और आपके लिए हमारे पास कोई आदर स्थान नहीं है ।" ये सब चीज़ें न्यायाधीशों के अनुचित आचरण करने में बाधक हैं ।

मेरे माननीय मित्र ने एक मुख्य न्यायाधिपति का जिक्र किया जिन्हें मैं जानता हूं और जो बड़े आदरणीय व्यक्ति हैं । पहले वह इलाहाबाद में थे, तब बिहार के मख्य न्यायाधिपति होकर गये, उसके बाद पंजाब गये और तत्पश्चात कलकत्ता गये । यदि वह कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे आते तो इसका कलकत्ते में सब ने स्वागत किया होता ।

श्री के० के० बसु : गत दो वर्षों में क्या हुआ ?

डा० काटजू : उसमें बुराई क्या है ? बंगाल सरकार कानूनों का मसविदा तैयार करने के लिये विशेषज्ञ परामर्श चाहती थी । मेरे माननीय मित्र ने कहा कि यह बहुत अनुचित बात है तथा नियुक्ति के सम्बन्ध में कई कथाएं चल रही हैं । मैं इन कथायों के प्रचलन को कैसे रोक सकता हूं ? यदि लोग कुछ भी कहना चाहते हैं, अथवा निन्दा करना चाहते हैं, तो वे किसी की भी निन्दा कर सकते हैं ।

श्री के० के० बसु : क्या मैं एक बात पूछ सकता हूं ? इस मामले के अतिरिक्त क्या और कोई ऐसा मामला है जिसमें कि किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को किसी सरकारी विभाग में नियुक्त किया गया हो ?

डा० काटजू : ऐसे छोटे ब्यौरों को जानने के लिये आपको अधिक अवसर है । मैं मानता हूं कि मुझे यह नहीं मालूम । मुझे सब माननीय सदस्यों से केवल यह कहना है कि हम भारत की सर्वसत्ता प्राप्त संसद में काम कर रहे हैं । इसलिए हमें कोई ऐसी चीज़ नहीं कहनी चाहिए जिससे कि अनेक व्यक्तिओं को खेद और क्षोभ और नुकसान हो । एक सांस में तो हम यह कह देते हैं कि हमारी न्यायपालिका सर्वोत्तमों में से एक है और दूसरी सांस में अनेक माननीय सदस्य यह कह देते हैं कि उससे न्याय का नकार होने की सम्भवना है । इसका अर्थ है न्यायपालिका की आपकी प्रशंसा वास्तविक नहीं है । या तो आप न्यायपालिका पर विश्वास मत कीजिए अथवा इस प्रकार की विरोधाभास की बात मत कीजिए ।

श्री सिंहासन सिंह : संविधान में २२० अनुच्छेद किस लिए रक्खा गया है ? इसके अनुसार उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को वकालत करने की इजाजत नहीं है । संविधान के लागू होने से पूर्व यह बात नहीं थी, वह किसी भी न्यायालय में वकालत कर सकते थे । यह अनुच्छेद संविधान-निर्माताओं ने, जिन में डा० काटजू भी सम्मिलित थे, किस प्रयोजन से बनाया था ?

डा० काटजू : दुर्भाग्यवश डा० काटजू वहां नहीं थे । यदि वह वहां होते तो उन्होंने अवश्य ही इस बात का प्रयत्न किया होता कि न्यायाधीशों को उच्च न्यायालयों अथवा उच्चत्तम न्यायालय में वकालत करने दिया जाय । जब इसकी अनुमति थी, उस समय मुझे कोई ऐसा मामला ज्ञात नहीं है जिसमें दुर्न्याय किया गया हो ।

मेरे माननीय मित्र श्री सिंहासन सिंह ने कहा कि उन्हें कोई नियुक्ति मत प्रदान कीजिए । उच्च न्यायालय का न्यायाधीश ६० वर्ष की आयु तक रह सकता है और उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश ६५ वर्ष तक । लेकिन उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय में लिया जा सकता है । मेरे माननीय मित्र की शंका यह है कि न्यायालयों के न्यायाधीशों का यह प्रयत्न रहेगा कि

उन्हें उच्चतम न्यायालय में ले लिया जाय और जब कभी ऐसा मामला आएगा जिसमें कि सरकार की दिलपचस्पी होगी तो उच्चतम न्यायालय की कुर्सी को ध्यान में रखते हुए वह सरकार के पक्ष में निर्णय दे देगा। मैं आपको बतला दूं कि इस प्रकार की मनोवृत्ति से मुझे घृणा है। न्यायाधीशों के प्रति यह उचित बात नहीं है। आप उनकी प्रशंसा करते हैं और साथ ही साथ उन पर शंका करते हैं। आप मंत्रियों की बुराई कीजिए। वे उनका उत्तर देने के लिए यहां मौजूद हैं। लेकिन बेचारे न्यायाधीश यहां आरोपों का उत्तर देने के लिये मौजूद नहीं हैं।

फिर मैं राजस्थान के न्यायाधीश के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। उनकी सिफारिश बड़े विद्वान, अनुभवी, योग्य और न्यायनिष्ट न्यायाधीश के रूप में राजस्थान के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा की गई थी। भारत के मुख्य न्यायाधिपति ने उनकी सिफारिश मंजूर कर ली। इसमें क्या बुराई है, मेरी समझ में नहीं आता। कभी कभी मेरे माननीय मित्र बिना पूरी तरह सोचे-समझे बातें कहे देते हैं। इस प्रकार की बातें कह कर आप न्यायाधीशों के प्रति जनता में शंका पैदा करते हैं।

पंडित एस० सी० मिश्र (मुंगेर उत्तर-पूर्व): बात सरकार के विरुद्ध कही गयी है, आप उसे न्यायाधीशों पर क्यों टाल रहे हैं; न्यायाधीशों पर कोई आरोप नहीं लगा रहा।

डा० काटजू: मुझे इस बात से प्रसन्नता है। आप चर्चा का अंत इस रूप में कर रहे हैं कि यह संसद, दलों के निरपेक्ष, हमारे न्यायाधीषों के प्रति अत्यंत आदर, प्रशंसा, मान तथा विश्वास प्रकट करती है।

सभापति महोदय: प्रश्न यह है:

'कि विधेयक को, संशोधित रूपमें, पारित किया जाय।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

लुशाई पहाड़ी ज़िला (नाम-परिवर्त्तन) विधेयक

गृह-कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू): मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"लुशाई पहाड़ी जिले के नाम में परिवर्त्तन करने वाले विधेयक पर, जिस रूप में कि वह राज्य परिषद द्वारा पारित किया गया, विचार किया जाए।"

यह विशुद्धतः एक औपचारिक विधेयक है। बात इस प्रकार है। आसाम के छः पहाड़ी जिलों से एक नामतः लुशाई पहाड़ी अपने नाम में परिवर्त्तन के लिये बड़ा आन्दोलन करता रहा है। इस ज़िले में जो आदिम जातियां रहती हैं, वे सम्मिलित रूप से 'मीज़ोस' कहलाती हैं—लुशाई उनमें से केवल एक का नाम है। इसलिए यह मांग की गयी है कि इस ज़िले का नाम बदल कर 'मीज़ो' ज़िला कर दिया जाए। यह मांग स्वीकार की जा रही है।

सभापति महोदय: प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ।

श्री एन० बी० चौधरी (घाटल): यह सर्वविदित है कि आदिम जाति के लोग अपने सामूहिक जीवन के लिए ख्यात हैं और इसलिये जब वे उन क्षेत्रों के लिए सामूहिक नाम रखने का आन्दोलन करते हैं तो यह उचित ही है कि हम उनके इस सुझाव को स्वीकार कर लें कि इस क्षेत्र का नाम 'मीज़ोराम' रख दिया जाए। उनकी भाषा में 'राम' के अर्थ क्षेत्र से हैं। इसलिए सरकार इस सुझाव को स्वीकार क्यों नहीं कर लेती?

इसके साथ मैं एक बात और कहना चाहता हूं। लुशाई पहाड़ियों के सम्बन्ध में मैं जानना चाहता हूं कि क्या इस पहाड़ी का विस्तार लुशाई आदिम जातियों के रहने के क्षेत्र से आगे तक है? यदि ऐसा है, तो पहाड़ी का नाम भी मीज़ो पहाड़ी क्यों नहीं रख दिया जाता।

[श्री एन० बी० चौधरी]

सभापति महोदय द्वारा प्रस्ताव मतदान के लिए रक्खा गया तथा स्वीकृत हुआ।

सभापति महोदय: कोई संशोधन नहीं है। प्रश्न यह है कि।

"खंड १ से ४, अधिनियमन सूत्र तथा पूरा नाम विधेयक का अंग बनें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

खंड १ से ४, अधिनियमन सूत्र तथा पूरा नाम विधेयक में जोड़ दिये गए।

डा० काटजू: मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

"विधेयक को पारित किया जाए।"

सभापति महोदय: प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ।

श्री साधन गुप्त (कलकत्ता—दक्षिण पूर्व): इस विधेयक के पारित होने के पहले मुझे आदिमजाति क्षेत्रों के बारे में कुछ कहना है। आदिमजातियों की भूमि के नामकरण के बारे में उनकी भावना का आदर किया जाना चाहिए। लुशाई पहाड़ियां आदि नाम तो अंग्रेजों ने दिये थे जिन्हें आदिमजातियों की भावनाओं के प्रति कोई आदर नहीं था। मैं श्री चौधरी के इस कथन से सहमत हूं कि हमें उस क्षेत्र को मीज़ो जिला कहने के बजाय, आदिमजातियों की इच्छाओं का पूरा पूरा आदर करते हुए, मीज़ोराम या उनकी इच्छा के अनुसार अन्य कोई नाम देना चाहिये।

इन क्षेत्रों के बारे में मुझे दूसरी एक बात कहनी है। हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष है और हम किसी धर्म विशेष के प्रचार का विरोध नहीं करते। किन्तु हमें इस बात की ओर सावधान रहना चाहिये कि कहीं धर्म की आड़ में राजकारण न खेला जाय। ईसा मसीह के मतों के प्रसार पर हमें कोई आपत्ति नहीं किन्तु उसकी आड़ में आइजेनहावर की नीति का प्रचार न किया जाए। धर्म प्रचार के नाम पर अनपढ़ लोगों में फूट की प्रवृत्ति न बढ़ाई जाए।

डा० काटजू: मेरे माननीय मित्र ने अभी अभी एक ऐसी बात का उल्लेख किया जिसका प्रस्तुत विधेयक से कोई संबंध नहीं है। हम सब लोग इन बातों के बारे में सावधान हैं और जैसा कि मैं पहले भी कई बार कह चुका हूं, हम चाहते हैं कि हमारे सारे देशवासियों को, चाहे वे मैदानों में रहने वाले हों या पहाड़ियों में, धर्म, व्यापार, परंपरा, आदि बातों में पूर्ण स्वातंत्र्य हो, किन्तु साथ साथ हम इस बारे में भी सावधान रहते हैं कि भारत की एकता पर आघात न हो। फूट की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिये जाने की सम्भावना भी नहीं हो सकती। वास्तव में, यह विधेयक इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है कि भारतीय एकता का विकास हो और आदिम जाति क्षेत्रों को भारत के अन्य क्षेत्रों के स्तर पर लाया जाये।

सभापति महोदय: प्रश्न यह है:

"विधेयक को पारित किया जाय।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

राज्य-परिषद् से सन्देश

सचिव: मुझे सदन को यह सूचना देनी है कि लोक-सभा द्वारा १७ अप्रैल, १९५४ को पारित विनियोग (संख्या २) विधेयक, १९५४ को राज्य-परिषद ने वापिस भेजा है और इस विधेयक के बारे में राज्य-परिषद् को लोक-सभा से कोई सिफारिश नहीं करनी है।

विलीन क्षेत्र (विधि) विधेयक

गृह-कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू): मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कतिपय विधियों को ऐसे क्षत्रों में, जिनका, संविधान के प्रारम्भ होने से पहले, अपवर्जित या अंशत: अपवर्जित क्षत्रों के रूप में प्रशासन कया जाता था, और जो,

संविधान के प्रारम्भ होने पर, कतिपय राज्यों में विलीन कर दिये गये, लागू करने की व्यवस्था करने वाले विधेयक पर, जिस रूप में कि वह राज्य परिषद् द्वारा पारित किया गया, विचार किया जाये ।"

यह एक अत्यंत औपचारिक सी बात है । संसद् द्वारा पारित कुछ अधिनियमों का, जिन्हें राज्य स्वयं लागू नहीं कर सकते, कार्य क्षेत्र बढ़ाने के हेतु यह विधेयक रखा गया है ।

सभापति महोदय द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ ।

श्री जजवाड़े (सन्थाल परगना व हज़ारीबाग) : माननीय चेयरमैन महोदय, भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुए करीब सात वर्ष होने को आये, आज स्वाधीनता के सातवें वर्ष जो यह विधेयक लाया गया है, तो उसको देख कर एक थोड़ा सा अचरज और हैरानी होती है । अंग्रेजी सल्तनत के काल म मानव समुदाय को वहां के साधारण जन अधिकार से वंचित रक्खा गया था । इस बिल के स्टेटमेंट आफ आब्जेकट्स में यह बतलाया गया है कि जो ऐरियाज़ एक्सक्लूडेड और पार्शियली एक्सक्लूडेड हैं, उनको भी उसी स्तर में लाने के लिये और वहां पर भी केंद्रीय सरकार के विधान को लागू करने के लिये सरकार चेष्टा कर रही है । वहां दूसरी तरफ मैं देखता हूं कि सरकार ने उन हल्कों को वंचित कर रक्खा है जिन्हें इन अधिकारों का उपयोग करने का पूरा मौका मिलना चाहिये था ।

सभापति महोदय : माननीय सदस्य अपना भाषण कल जारी रख सकते हैं ।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, २६ अप्रैल, १९५४ को सवा आठ बजे तक के लिए स्थगित हुई

GIIND H. S.—110 P. S. D. — 18-11-54—285